श्री हनुमान चरित्र

[गद्य-पद्य तथा हनुमानाष्टक सहित]

लेखक गद्य

मास्टर सुखचन्द्र पद्मशाह पोरवाड़

पद्य लेखक

कवि श्री ब्रह्मरायजो

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् पुष्प संख्या-१०७

आशीर्वाद : आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज

निर्देशन : गणिनी आर्यिका स्याद्वादमती माता जी

ग्रन्थ : **श्री हनुमान चरित्र**

लेखक : मास्टर सुखचन्द्र पद्मशाह पोरवाड़

: कवि ब्रहारायजी

संस्करण : द्वितीय
वीर० नि० संवत् २५३२ सन् २००५

पुस्तकप्राप्ति-स्थान : (१) आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज संघ
(२) अनेकान्त सिद्धांत समिति, लोहारिया (बांसवाड़ा) राजस्थान
(३) दिगम्बर जैन महासभा कार्यालय ऐशबाग, लखनऊ
(४) विमल भरत साहित्य सदन, सम्मेदशिखर, मधुबन

मूल्य : २७/- रुपये

मुद्रक : जैन प्रिन्टर्स, उदयपुर (राज.)
दूरभाष : (०२९४) २४२५८४३

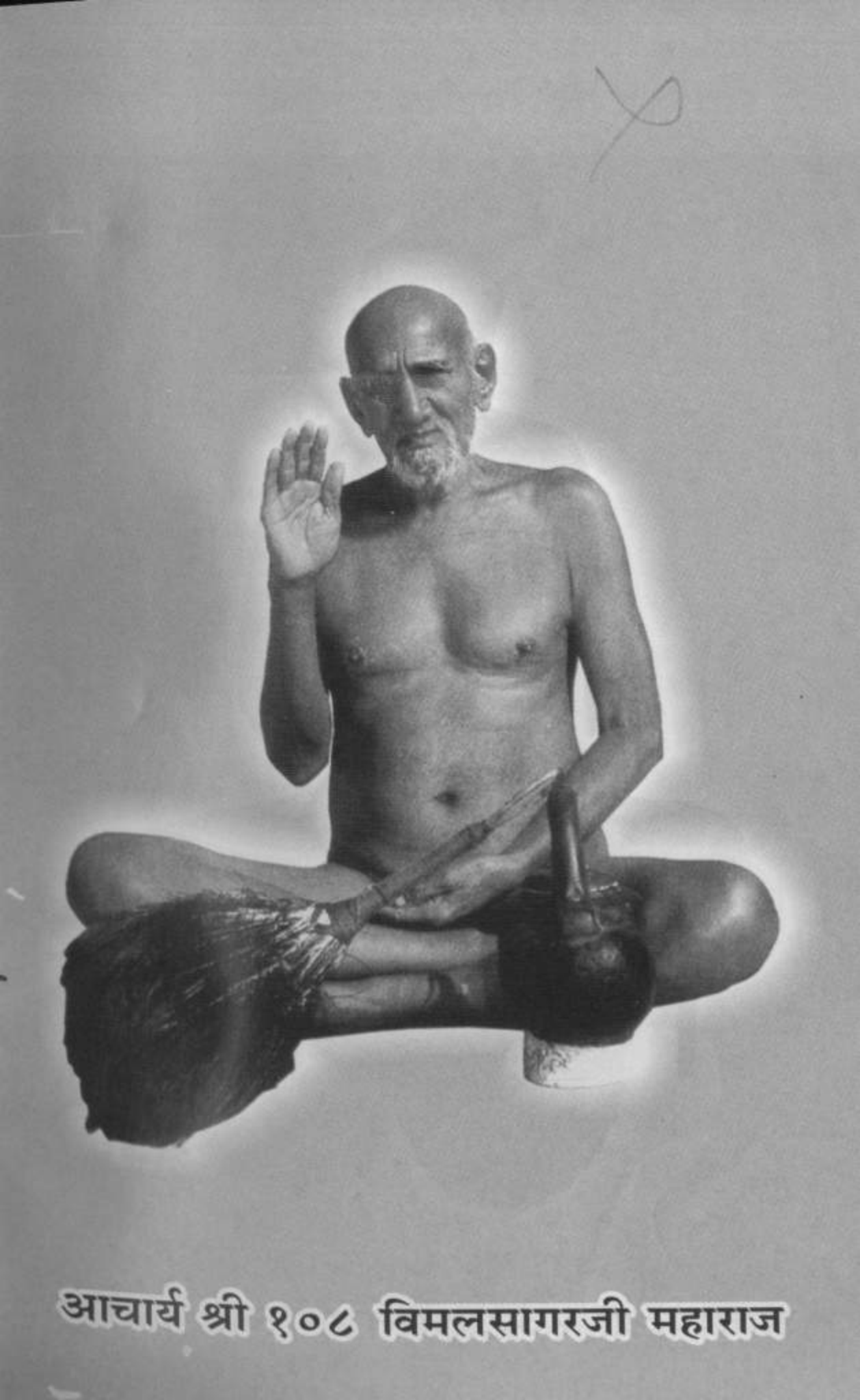

आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी महाराज

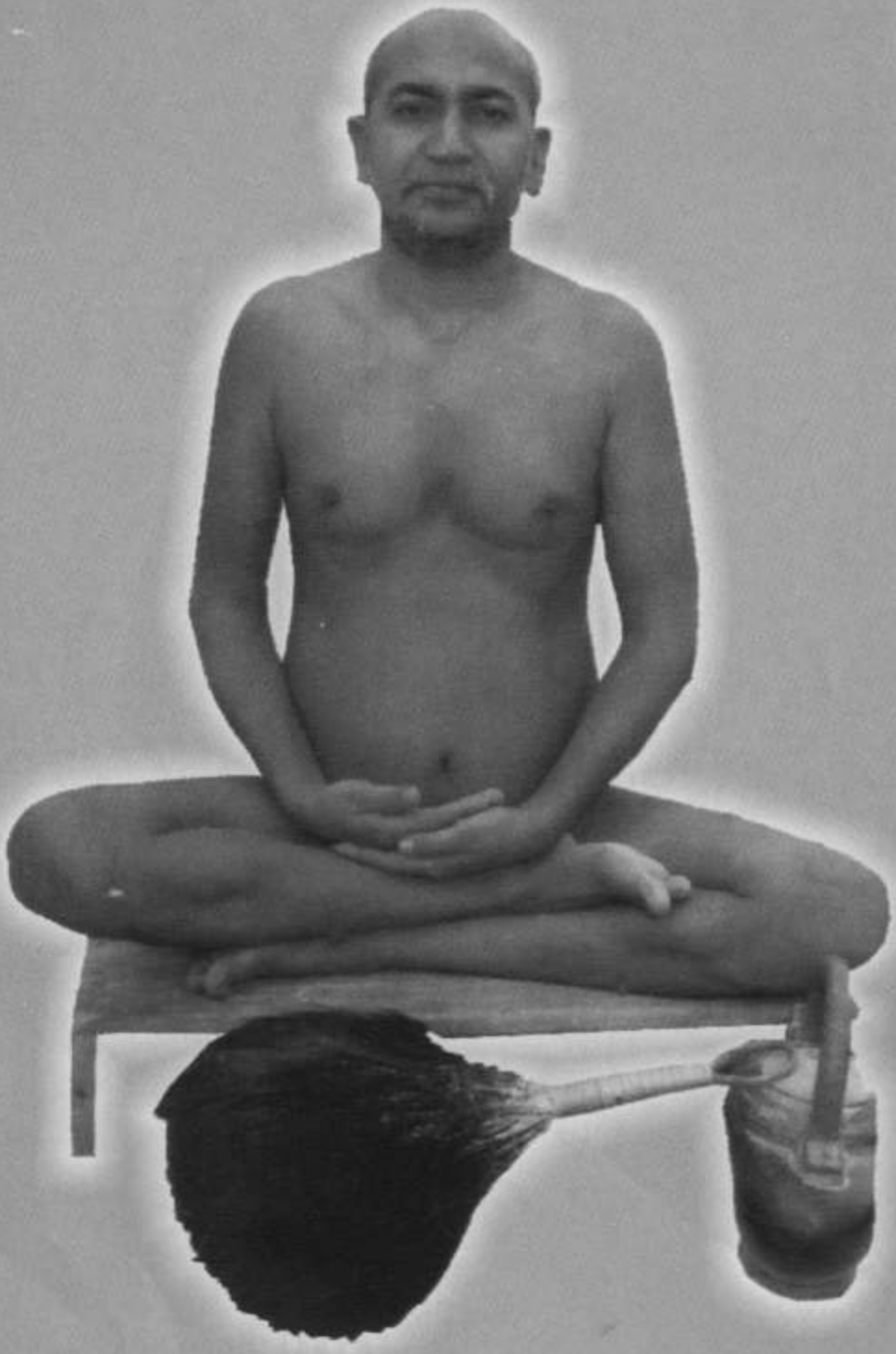

आचार्य श्री १०८ भरतसागरजी महाराज

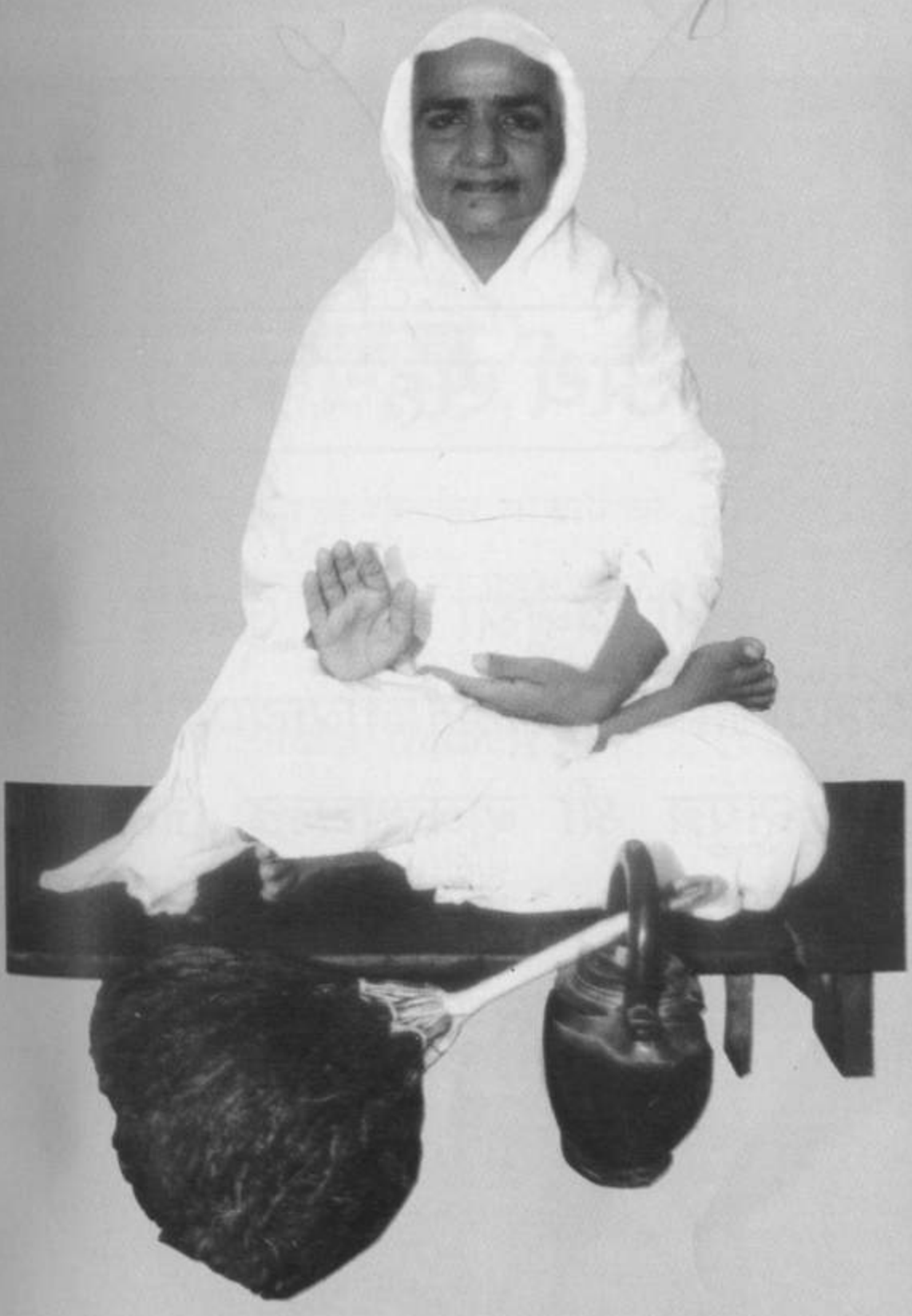

गणिनी आर्यिका श्री स्याद्वादमती माताजी

अर्थ सहयोग

श्री बसुधा देवी जैन
धर्मपत्नी श्री लक्ष्मीनारायणजी जैन
सुपुत्र श्री राकेशचन्द्र जैन

मुजफ्फरपुर (बिहार)

समर्पण

प.पू. वात्सल्य रत्नाकर आचार्य श्री

१०८ विमलसागर जी महाराज के

पट्ट शिष्य

मर्यादा-शिष्योत्तम

ज्ञान-दिवाकर

प्रशान्त-मूर्ति

वाणी भूषण

भुवन भास्कर

गुरुदेव आचार्य श्री १०८ भरतसागर जी महाराज

के श्री कर-कमलों में ग्रन्थराज

सादर-समर्पित

प्रार्थना

हे वीतराग स्वामी, नित प्रार्थना हमारी।
अज्ञान को तजें हम, बन ज्ञान के पुजारी।।
हिंसादि पाप तजकर,
सत्पथ पे हम चलेंगे।
क्रोध कषाय तजकर,
स्वभाव हम धरेंगे।।१।। हे वीतराग०

माता पिता की सेवा,
भक्ति गुरुजनों की।
प्रातः सुजल्दी उठकर,
नित करेंगे ईश भक्ति।।२।। हे वीतराग०

दो नाथ हमको शक्ति,
तुम सम बनेंगे हम भी।
दुःखियों की सेवा करके,
पायेंगे आत्म शक्ति।।३।। हे वीतराग०

नव देवता स्तवन

रचियत्री-गणिनी आर्यिका स्याद्वादमती माताजी

दोहा

परमेष्ठी पाँचों नमूँ, जिनवाणी उरलाय ।
जिन मारग को धारकर, चैत्य चैत्यालय ध्याय॥

तर्ज - अहो जगत्गुरु देव सुनियो .....

अरिहन्त प्रभु का नाम, है जग में सुखदाई।
घाति चतु क्षयकार, केवल ज्योति पाई॥
वीतराग सरवज्ञ, हित उपदेशी कहाये।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो नित भक्ति सुध्यावे॥१॥

सिद्ध प्रभु गुणखान, सिद्धि के हो प्रदाता।
कर्म आठ सब काट, करते मुक्ति वासा॥
शुद्ध-बुद्ध अविकार, शिव सुखकारी नाथा।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो नित नावे माथा॥२॥

आचारज गुणकार, पञ्चाचार को पाले।
शिक्षा दीक्षा प्रदान भविजन के दुःख टाले॥
अनुग्रह निग्रह काज, मुक्ति मारग चरते।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो आचारज भजते॥३॥

ज्ञान धयान लवलीन, जिनवाणी रस पीते।
अध्ययन, शिक्षा प्रधान, संघ में जो नित करते॥
रत्नत्रय गुणधाम, उपदेशामृत देते।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो नित उवज्झाय भजते॥४॥

दर्शन ज्ञन चरित्र, मुक्ति मार्ग कहाये।
तिनप्रति साधन रूप, साधु दिगम्बर भाये।।
विषयाशा को त्याग, निज आतम चित पागे।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो नित साधु ध्यावे।।५।।
तत्त्व द्रव्य गुण सार, वीतराग मुख निकसी।
गणधर ने गुणधार, जिनमाला इक गूंथी।।
स्याद्वाद चिह्न सार, वस्तु अनेकान्त गाई।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो जिनवाणी ध्याई।।६।।
सम्यक् श्रद्धा सार, देव शास्त्र गुरु भाई।
सम्यक् तत्त्व विचार, सम्यक् ज्ञान कहाई।।
सम्यक् होय अचार, सम्यक्चारित गाई।
ऋद्धि सिद्धि सब पाय, जो जिन मारग धाई।।७।।
वीतराग जिनबिम्ब, मूरत हो सुखदाई।
दर्पण सम निजबिम्ब, दिखता जिसमें भाई।।
कर्म कलंक नशाय, जो नित दर्शन पाते।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो नित चैत्य को ध्याते।।८।।
वीतराग जिनबिम्ब, कृत्रिमाकृत्रिम जितने।
शोभत हैं जिस देश, हैं चैत्यालय उतने ।।
उन सबकी जो सार, भक्ति महिमा गावे।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो चैत्यालय ध्यावे।।९।।

दोहा

नव देवता को नित भजे, कर्म कलंक नशाय।
भव सागर से पार हो, शिव सुख में रमजाय।।

नोट :- प्रतिदिन प्रातः पाठ करने से जीवन सुख, शान्ति और समृद्धि को प्राप्त होता है।

विषय-सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	वायुकुमार और अंजनी का वृत्तान्त	१२
२.	वायुकुमार की काम चेष्टा	१७
३.	वायुकुमार का अंजना पर कोप	१९
४.	वायुकुमार का अंजना पर प्रेम	२३
५.	अंजना को वनवास	२९
६.	हनुमानजी का जन्म	३५
७.	पवनकुमार का अंजना के विरह में वन में फिरना	४०
८.	हनुमानजी का रावण की भानजी से विवाह	४६
९.	सीता हरण	५१
१०.	सुग्रीवका श्री रामको मिलाप	५३
११.	हनुमानजी का श्री राम से मिलाप	५९
१२.	हनुमानजी का लंका प्रति गमन	६२
१३.	हनुमानजी का सीताजी से मिलाप	६९
१४.	श्री रामकी लंका पर चढ़ाई	७७
१५.	रावण की मृत्यु	८४
१६.	श्री रामका अयोध्या में प्रवेश	८७
१७.	श्री हनुमानजी का दीक्षा लेना	९०
१८.	हनुमानजी का चरित्र भाषा पद्य में चौपाई वस्तुबंध छंद में	९५-१६९
१९.	हनुमंताष्टकम्	१७०

श्रीवीतरागाय नमः

श्री हनुमान चरित्र

वायुकुमार और अंजनी का वृतान्त

इस भरत क्षेत्र में विजयार्ध नामा एक पर्वत है, जिसकी दक्षिण श्रेणी में जो पृथ्वी से दस योजन ऊँची है, आदित्यपुर नामा एक अति मनोहर नगरी है। उसमें वापिका, कूप, सरोवर, वन, वाटिका आदि शोभायमान हैं, मानों इंद्रपुरी ही लोगों के पुण्य से वहाँ आ गई है। उसमें सात-सात, आठ-आठ स्वर्ण के महल, हैं, जिनकी सुवर्णकी भीतें रत्नों की मालाओं से शोभित हो रही हैं।

उस नगर में ढग-ढग जिन-मंदिर बने हुए हैं, जिनमें भव्यजीव उत्सव कर रहे हैं। नगर के चहुँ ओर ऊँचे कोट और समुद्र की खाई परम रमणीक मालूम पड़ती है। यह नगरी उत्तमोत्तम रत्नों के समूह को लेकर कहीं चली न जाय, इसी विचार से मानों खाईने उसे घेर रक्खा है। वहाँ के राजमार्ग मदोन्मत्त हाथियों के आने-जाने और उनके मदजल झरने से कीचड़युक्त हो रहे हैं, वहाँ राजा सदाकाल निवास करता था, इस कारण वह पृथ्वीतल पर अद्वितीय राजधानी बन रही थी, और द्रव्यादिकी इच्छा करने वाले पुरुषों को चिंतामणि के तुल्य प्रिय जान पड़ती थी। वहाँ की स्त्रियों के रूप को देखकर देवांगनाओं ने भी अपने रूप-लावण्यका घमंड छोड़ दिया था।

इस आदित्यपुर नामा नगर में प्राह्लाद नामका राजा राज्य करता था, जो अपनी प्रजाकी पिता के समान रक्षा करता था। लोक के

सेवक के समान बंधु सेवकों का मित्र, और शरणागतों का रक्षक था। उसकी केतु मति नामा रानी थी, जो निर्मल चित्तकी धारण करने वाली, शीलवती, स्त्रियों में शिरोमणि, पुण्यवती, लावण्य के सर्व लक्षणों से मंडित, और अपने रूप की संपदासे देवांगनाओं के भी रूप को तिरस्कार करने वाली थी। उनके वायुकुमार नाम पुत्र था। जब वह संपूर्ण यौवन को प्राप्त हुआ, तब माता पिता को उसके विवाह की चिंता उत्पन्न हुई।

इस ही भरतक्षेत्र की दक्षिण-पूर्व दिशा में दंती नामा एक पर्वत है। उसमें स्वर्गपुरी समान महेन्द्रपुर नामा एक नगर है, जिसे इंद्रतुल्य राजा महेन्द्र विद्यारधर ने बसाया था। वह निर्मल चित्तका धारक, विवेकी, दुष्टों का निग्रह करने वाला, सत्पुरुषों की रक्षा में दत्तचित्त, सम्यक्त्व से शोभायमान था।

उस राजा की हृदयवेगा नाम की रानी थी, जो सरल स्वभाव की धारक, पाप से भयभीत, अपने गुणों से संसार में विख्यात, गुणों की खानि, पति के अत्यन्त स्नेह के भारसे मंद गमन करने वाली, और पतिव्रता स्त्रियों के गुणों को धारण करने वाली थी। उनके अरिंदमादि महा गुणवान् सौ पुत्र और अंजना सुन्दरी नामा एक पुत्री थी।

उस अंजना सुन्दरी ने अपनी वेणी से कृष्ण सर्पकी कृष्णता व नरमाई को, बोली से अमृत को, ललाट से अष्टमी के चन्द्रमा को, मुख से सुधांशु को, नाशिका से तोते की चोंचको, नेत्रों से मृगी को, भौहों से कामदेव के धनुष को, कण्ठ से शंख को, स्वर से कोकिला को, स्तनों से नारियल को और भुजासे पुष्पमाला को जीत लिया

था, और जिसकी केशरी समान कमर और कदली स्तंभ जंघा थी।

एक दिन उस सर्वकला की जाननहारी साक्षात् सरस्वती को नवयौवन में सखियों के साथ क्रीड़ी करती हुई देख, राजा महेन्द्र को चिन्ता उत्पन्न हुई। संसार में माता-पिता के दुःख का कारण कन्या ही है। जो बड़े कुल के लोग हैं उनको यही चिन्ता लगी रहती है कि कन्या को योग्य पति मिले, चिरकाल तक उसका सौभाग्य रहे और कन्या निर्दूषण रहे। तब राजा महेन्द्र ने अपने मंत्रियों को बुलाकर कहा-"हे मंत्रियो ! अब कन्या यौवनारूढ़ हुई है, सो तुम मुझे कोई उसके योग्य श्रेष्ठ वर बताओ।"

अमरनाथ मंत्री बोला-"मेरी समझमें लंकापति रावण कन्या के योग्य है, अथवा उसके पुत्र मेघनाथ या इन्द्रजीत भी ठीक है।"

सुमति नामा मंत्री बोला-"हे देव ! रावण कन्या के योग्य नहीं है, क्योंकि उसकी वय अधिक और कन्या की वय कम है और उसकी अठारह हजार रानियाँ हैं, जिनमें मन्दोदरी पट्टरानी हैं, और यदि मेघनाथ या इन्द्रजीत को देवें तो उन भाइयों में विरोध उत्पन्न होने का भय है।"

यह सुन ताराधरायण नामा मंत्री बोला-"कनकपुर के राजा हिरण्यप्रभ का एक सौदामिनीप्रभ नामा पुत्र है, जो महा कांतिवान, सर्व-कला और विद्या का पारगामी और महा पराक्रमी है, जैसी कन्या तैसा वर। इसलिए यह कुमारी उसे ब्याहो।"

तब संदेहपारग नामा मंत्री बोला-"हे देव ! यह सौदामिनीप्रभ कुमार महा भव्य है। उसका निरन्तर यह विचार रहता है कि संसार अनित्य है, सो संसार का स्वरूप जान, वह अठारहवें ही वर्ष में वैराग्य

लेगा और भोगरूप गृहबन्धन छुड़ाय बाह्याभ्यन्तर परिग्रह को परिहर, केवलज्ञानी हो मोक्ष को जायगा। यदि कन्या उसे परणावें, तो वह पति बिना नहीं शोभेगी।''

आदित्यपुर के राजा प्राह्लाद का पुत्र वायुकुमार पराक्रम का समूह, रूपवान, शीलवान, गुणनिधान, शुभ शरीर, महावीर और खोटी चेष्टाओं से रहित हैं। उसके गुण सर्व लोक में व्याप रहे हैं। इसलिये अंजना सुन्दरी का पाणिग्रहण वायुकुमार से कराओ। राजा महेन्द्र को यह सम्बन्ध पसन्द आया और कुमारी भी यह बात सुन कुमुदिनी समान प्रफुल्लित हुई।

अथानंतर वसंत ऋतु आई, नवीन कमलों के समूह की सुगंध से दशों दिशाएँ सुगन्धित हो गईं। वृक्षों पर नये पल्लव-पुष्पादि प्रकट हो गये। आम्रवृक्षों पर मौल आये, जिन पर भ्रमर गुंजारने लगे, कोकिलाओं के शब्द मानिनी नायिकाओं के मानका मोचन करने लगे, नरनारियों में स्नेह बढ़ने लगा। स्त्री-पुरुष एक क्षण भी वियोग सहन न कर सकने लगे। इस वसंत में फाल्गुन शुक्ल अष्टमी से लेकर पूर्णमासी तक अष्टाह्निका के दिन महा मंगल रूप हैं। सो इंद्रादिक देव पूजा की सामग्री ले आकाश-मार्ग से नंदीश्वरद्वीप को जाने लगे। उन्हें देख राजा महेन्द्र भी परिवार सहित भगवान की वंदना के लिये कैलाश पर्वत को गये। और पूजा-स्तुति कर एक शिलापर बैठे।

राजा प्राह्लाद भी वंदना के अर्थ वहाँ आये थे। सो वे वंदना कर पर्वत पर विहार करते हुए राजा महेन्द्र की दृष्टि पड़े। जब राजा प्राह्लाद समीप आये, तो राजा महेन्द्र उठ खड़े हो उनसे भेंटे; और वे दोनों एक मनोज्ञ शिला पर बैठ परस्पर शारीरिकादि कुशल पूछने लगे।

राजा महेन्द्र बोले-"हे मित्र ! मेरी कुशल कहाँ से ? क्योंकि अंजना को व्याह योग्य देख, उसके लिये योग्य वर की चिंता से चित्त व्याकुल रहता है। यदि रावण को दे, तो वह उम्र में अधिक है और उसके पुत्रों में से किसी को दे तो उन भाइयों में विरोध होने का भय है। और हेमपुर के राजा कनकप्रभ का पुत्र सौदामिनीप्रभ अठारहवें ही वर्ष संयम धारेगा। अब हमारा निश्चय आपके पुत्र पवनञ्जय पर है।"

राजा प्राह्लाद बोले-"मुझे पुत्र के विवाह की चिंता लगी हुई थी, सो आपके वचन सुन बहुत आनन्दित हुवा। जो आप कहें सो ही प्रमाण है। मेरे पुत्र का बड़ा भाग्य है, जो आपने कृपा कर वर-कन्या का विवाह मानसरोवर के तटपर ठहराया।" यह समाचार सुन दोनों सेनाओं में आनंद के शब्द हुए और ज्योतिषियों ने तीन दिन का लग्न बताया।

वायुकुमार की कामचेष्टा

वायुकुमार अंजना के रूप की अद्‌भुतता सुन काम पीड़ित हो गया, चिंता व्यापने लगी, कुमारी को देखने की अभिलाषा उत्पन्न हुई; ठंडी श्वास निकलने लगी, कामज्वर हो गया, अंग खेदरूप हो गया, पुष्पादित सुगन्धित वस्तुओं से अरुचि हो गई और भोजन विष समान लगने लगा। वह मनमें कहने लगा कि मेरे शरीर में कोई भी घाव नहीं है, तो भी वेदना बहुत है। मैं एक जगह बैठा हूँ और मन अनेक जगह भ्रमण कर रहा है।

उसे बिना देखे ये तीन दिन कुशल से न जायेंगे, इसलिए उसके देखने का कोई उपाय करूँ। ऐसा विचार वह अपने प्रहस्त नामा मित्र से कहने लगा-"हे मित्र ! तू मेरा सर्व अभिप्राय जानता है। हे सखे ! तुम बिना यह किसको कहूँ ? जैसे किसान अपना दुःख राजा से, शिष्य गुरु से, स्त्री पति से, रोगी वैद्य से और बालक माता से कहता है, वैसे ही बुद्धिमान अपने मित्र से कहता है। उस राजा महेन्द्र की पुत्री के गुण और रूपके श्रवणही से मेरी यह विकल दशा हुई है। इसलिए कोई ऐसा यत्न करो, जिससे उसके दर्शन हों।

प्रहस्त बोला-"तुम्हारे और मेरे बीच में कोई भेद नहीं है। जो कुछ करना हो उसमें ढील न करो।"

इतने में सूर्य अस्त हुआ और दशों दिशाओं ने कृष्ण वस्त्र धारण कर लिये। पवनंजय कहने लगा- चलो, अपन वहाँ चलें, जहाँ मेरे चित्त को चुराने वाली है। ऐसा कह वे दोनों एक विमान में बैठे और आकाश-मार्ग से अंजना सुन्दरी के सात खणे महल के झरोखे में उतरे

और मोतियों की झालरों के आश्रय से वहीं छुपकर बैठ गये तो थोड़ी देर में अंजना सुन्दरी सखियों सहित वहाँ आई।

पवनकुमार उस सर्व शुभ लक्षणों की धारक सर्वांग सुन्दरी मनोहर कुमारी को देख मन में विचार ने लगा कि यह लक्ष्मी है या इन्द्राणी, पार्वती है या चन्द्रकी स्त्री रोहिणी, काम की वल्लभा रति है या यशकी मूर्ति है? लोगों का कहना है कि चंद्रमा सागर से उत्पन्न हुआ है परन्तु मैं तो केवल इसके कपोलों पर स्वेद के बिन्दु ही चन्द्रमा देखता हूँ। ऐसा मालूम होता है कि ब्रह्माने चन्द्रका सार ग्रहण करके इसका मुख बनाया है। कमल से इसके हाथ-पाँव बनाये हैं, हस्थि के कुम्भ स्थल लेकर दोनों स्तन बनाये हैं, मृगी के नेत्रों से नेत्र बनाये हैं और हंसनी की चाल लेकर इसकी गति बनाई है। अथवा विधाता ने किस प्रकार इसकी रचना की है, कुछ समझ में नहीं आता, इसके समान रूपवती सुन्दरांगी जगत में न कोई है और न कभी होगी।

उसही का जन्म सफल है, उसही का भव पाना सार्थक है और उसही के पूर्वप्रबल पुण्य का इस समय उदय है, जिसकी यह मनोहर कुमारी प्राणवल्लभा हो। वह कुमार ऐसा विचार कर ही रहा था कि वसन्तमाला सखी अंजना से कहने लगी-"हे सुरुपे ! तू धन्य है जो वायुकुमार तेरे भर्त्तार होंगे, वे कुमार महाप्रतापी हैं। उनके गुण चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल हैं, तुम उस योद्धा के अंग में ऐसी रहो जैसे समुद्र में लहर!"

सखी की बात सुन अंजना लज्जावश चरणों के नखों की ओर निहारने लगी और पवनंजय भी हर्ष से फूल गये।

वायुकुमार का अंजना पर कोप

उस ही समय मित्र केशी नामा एक दूसरी सखी होठ चबा चोटी हिला बोली-"यदि सौदामिनीप्रभ पति होता तो हे कुमारी ! तेरा जन्म सफल होता। हे वसंतमाला ! सौदामिनीप्रभ और वायुकुमार में समुद्र और गोष्पद समान भेद है, विद्युतप्रभ की कथा बड़े-बड़े पुरुषों से सुनी है, उसके गुणों की मेघ के बिन्दुओं समान संख्या नहीं है। महाराज ने उसका अठारहवें वर्ष वैराग्य धारण करना सुन जो उसे यह अंजना नहीं दी सो ठीक नहीं किया। सौदामिनीप्रभ का क्षणिक ही संयोग क्षुद्र पुरुष के दीर्घकाल संयोग से अच्छा है।"

वायुकुमार यह वार्ता सुन क्रोधरूप अग्नि से प्रज्वलित हो गया, और म्यान से तलवार निकाल प्रहस्त से बोला-"इस अंजना को हमारी निन्दा भाती है, क्योंकि यह दासी ऐसे वचन कहती हैं और वह बिना कुछ भी कहे सुनती है। मैं अभी इन दोनों का सिर उड़ा दूँगा। देखें इन्हें विद्युत्प्रभ कैसे सहायता देता है?"

प्रहस्त बोला-"हे मित्र ! तुम्हारी यह तलवार जो बड़े-बड़े सामन्तों के सिर पर चलती है वह अबलाओं के सिर पर कैसे पड़ सकती है ? स्त्री-हत्या, बाल-हत्या, दुर्बल-हत्या आदि शास्त्र वर्जित हैं।" पवनकुमार बोला-"अच्छा ! चलो, छुपकर ही निकल चलें।" ऐसा कह वे दोनों आकाश-मार्ग से अपने डेरे में आ गये।

पवनकुमार अंजना से फीका पड़ गया, और विचार ने लगा कि-जिसे दूसरे पुरुष का अनुराग है उसे दूर ही से छोड़ देना चाहिये। खोटे

राजा की सेवा शत्रु के आश्रय, शिथिल मित्र और अनासक्त स्त्री से कहाँ सुख हो सकता है ? तब अंजना से विमुख पवनकुमार बोला- "हे मित्र! उस मानसरोवर के तट अपने डेरे अंजना के डेरों के समीप हैं सो जो हवा वहाँ से बहकर आती है वह मुझे नहीं सुहाती है, इसलिये अपने नगर को चलें। देरी करना उचित नहीं है।" मित्र ने कुमार की आज्ञा प्रमाण कर, सेना को कूच की आज्ञा दी। रथ, घोड़े, हाथी, पियादे आदि की समुद्र समान सेना चलने लगी, जिससे बहुत शब्द हुआ।

सेना के पयान के शब्द सुन, कुमार का कूच समझ अंजना बहुत दुःखित हुयी और विचार ने लगी- हाय ! मुझे पूर्वो पार्जित कर्म ने महा निधान दिया था, सो दैव ने छीन लिया। क्या करूँ ? अब क्या होगा ? जो मेरे भाग्य से मेरे प्रियतम की सुदृष्टि मेरे पर हो, तो मैं जीऊँगी और जो मेरे नाथ मेरा परित्याग करेंगे तो मैं अनशन व्रत धर शरीर तजूँगी, ऐसा चिंतवन करती वह सती मूर्च्छा खा पृथ्वी पर ऐसी पड़ी जैसे कोई मूल रहित लता निराश्रित हो गिर पड़े। सब सखियों ने शीतोपचार कर उसे सचेत किया और जब उन्होंने मूर्च्छा का कारण पूछा, तो वह लज्जावश कुछ न कह सकी।

राजा महेन्द्र कुमार का कूच सुन अति व्याकुल हुआ और समस्त भाइयों सहित राजा प्राह्लाद के पास आया। तब राजा महेन्द्र और राजा प्राह्लाद कुमार को कहने लगे- "हे कल्याणरूप ! यह कूच क्यों किया है ? अहो ! तुमको किसने अनिष्ट कहा है ? शोभायमान ! तुम किसको अप्रिय हो ? तुम्हारे पिता का और हमारा वचन यदि

सदोष भी हो, तो तुम्हें सर्वथा मान्य होना चाहिये। हे प्रिय ! पीछे फिरो और हमारे मन वांच्छित पूर्ण करो।''

गुरुजनों की बात सुन कुमार का सिर नीचा हो गया। उनकी आज्ञा से वह पीछे फिरा और मन में विचार ने लगा कि अंजना को व्याह कर तज दूँगा, जिससे वह दुःख से जन्म पूरा करे और पर का भी इसे संयोग न हो।

अंजना प्राणवल्लभ को पीछे फिरा सुन हर्षित हुयी। लग्न के समय इनका विवाह मंगल हुआ। अशोक के पल्लव समान आरक्त अति कोमल कन्या का कर जब दुलहे के हाथ में दिया गया, तब वह कुमार को अग्नि की ज्वाला समान लगा और जब कभी कुमार की दृष्टि उस पर अनच्छिा पड़ जाती, तो वह उसे विद्युत् पात समान सहन न कर सकता। बड़े विधान से इनका विवाह कर सर्व बन्धुगण आनन्दित हुए। दोनों सम्बन्धी मानसरोवर के तट महान उत्सव से एक मासतक रहे।

पवनकुमार ने अंजना को व्याह बाद ऐसी तजी कि वह उसका मुख तक न देखता। अंजना पति के असंभाषण से और उनकी कृपा दृष्टि न देख बहुत दुःखी हुई। रात्रि में उसे निद्रा न आती, अश्रुधारा बहती रहती; और शरीर मलिन हो गया। विवाह की वेदी में जो पति का मुख देखा था, वह उसी का ध्यान किया करती। अन्तंरग ध्यान में पति का रूप निरूपण कर जब वह बाह्य दर्शन न कर सकती तो वह सर्व चेष्टारहित हो, शोक कर बैठी रहती और मन में कहती- ''हे नाथ ! तुम्हारे मनोज्ञ अंगों के मेरे हृदय में होते भी मुझे आताप

क्यों होता है ? मैं निरापराध हूँ ! आप निः कारण मुझ पर कोप क्यों करते हो? अब प्रसन्न होओ। मैं तुम्हारी भक्ता हूँ। मेरे चित्त के विषाद को हरो।"

मैं हाथ जोड़ यह विनती करती हूँ कि जैसे आप अन्तरंग दर्शन देते हो, वैसे ही बहिरंग दर्शन भी दो। जैसे बिना सूर्य दिन, बिना चन्द्रमा रात्रि और बिना क्षमा, दया, शील, संतोषादि गुणों के विद्या नहीं शोभती तैसे ही आपकी कृपा बिना मेरी शोभा नहीं है। इस तरह वह मन में पति को उलहना देती और बड़े-बड़े मोतियों के समान नेत्रों से अश्रुबूँदें झराती रहतीं। कोमल सेज उसे न सुहाती; स्नानादि संस्कार रहित रहती; और केश न गूँथती। एक दिन उसे वर्ष समान बीतता ! कुमारी की यह अवस्था देख सब परिवार व्याकुल हुआ; और सबको उस बेलाकी अभिलाषा लगी रहती, जबकि कुमार इस प्रिया को समीप ले बैठे, कृपा दृष्टि से देखे और मिष्ट वचन बोल उसे प्रसन्न करे।

वायुकुमार का अंजना पर प्रेम

अथान्तर पुण्डरीक नगर के राजा वरुण और लंकापति दशानन * (रावण) में विरोध उत्पन्न हो गया। यह वरुण प्रतापवन्त और शूरवीर था और उसकी चतुरंग सेना बहुत भारी थी। रावण ने उसे अपने आधीन करने की इच्छा से उसके पास एक दूत भेजा। वह दूत राजा वरुण के पास जा कहने लगा-"हे विद्याधर पते ! सर्वके पति अर्द्धचक्री रावण की यह आज्ञा है कि तुम उसे प्रणाम करो अथवा युद्ध की तैयारी करो।"

---

* लंका द्वीप में रत्नश्रवा माना महा शूरवीर, दातार और जगत् प्रिय राजा राज्य करता था। वह धीरवीर विद्या साधने को पुष्पक नामा महा घोर वन में गया। वहाँ उसकी सेवा के लिये राजा व्योमबिंदुने अपनी पुत्री कैकसी को भेजी, जो सेवा कर हाथ जोड़ खड़ी रहती थी। कितनेक दिन पश्चात् नियम समाप्त होने पर रत्नश्रवाने मौन छोड़ कैकसी को पूछा-"हे बाले! तू कौन है, किसकी पुत्री है और किस कारण यूथ से बिछड़ी हुयी मृगी के समान वन में अकेली रहती है ?"

वह बोली-हे राजा ! मैं व्योमबिंदु और रानी वंदवती की पुत्री हूँ। आपकी सेवा के लिये उनने मुझे यहाँ भेजी है, उस ही समय रत्नश्रवा को मानस्तंभिनी विद्या सिद्ध हो गई। विद्या के प्रभाव से उस ही वन में पुष्पांतक नामा नगर बसाया और कैकसी का विधिपूर्वक पाणिग्रहण कर कतिपय काल वहीं रहे।

अथानन्तर रानी कैकसी ने शुभ गर्भ धारण किया। नवमें महिने पुत्र हुआ। जब रावण का जन्म हुवा तब वैरियों के आसन कम्पायमान हुए। देव दुंदुभिएँ बजने लगीं। माता-पिता ने पुत्र के जन्म का अति हर्ष किया और बहुत दान दिया। आगे इनके बड़े राजा मेघवाहन को इन्द्रों के राजा भीम ने एक हार दिया था जिसकी हजार नागकुमार देव रक्षा करते थे। यह हार पास ही धरा हुआ था सो प्रथम ही दिवस बालक रावण ने उसे मुट्ठी में पकड़ लिया। राजा रत्नश्रवा यह देख आश्चर्य करने लगे और मन में विचारा-यह कोई महापुरुष होना चाहिये, क्योंकि यह हजार नागकुमार देव रक्षित हार से क्रीड़ा करता है।

आगे चारणमुनि ने कहा था कि तेरे यहाँ पदवीधर पुत्र होगा सो यह प्रतिवासुदेव प्रकट हुआ है। फिर पिताने हार बालक के गले में पहनाया। उस हार में नव

तब राजा वरुण हँसकर कहने लगा- "हे दूत ! अर्द्धचक्री किस वस्तु का नाम है, और वह कहाँ पाई जाती है ? यह नाम तो मैंने आज तक नहीं सुना था। रावण कौन है और कहाँ रहता है ? मैं न तो इन्द्र, न वैश्रवण, न यम और न सहस्ररश्मि हूँ, जो वह मुझे दबा ले। यदि देवताओं को वश करलेने से उसे गर्व उत्पन्न हुवा है तो मैं उसे गला दूँगा। घर में बैठे बड़ाई मारना क्षत्रियों का धर्म नहीं है। उसे जाकर कह देना कि यदि तुझ में बल है तो युद्ध करने को तैयार हो जावे।"

दूतने जा रावण को सब वृत्तांत कह सुनाया। तब रावण ने समुद्रतुल्य सेना से वरुण के नगर को घेर लिया और उसे बिना दिव्य अस्त्रों के जीतने की प्रतिज्ञा की। युद्ध में वरुण के पुत्रों ने रावण के बहनोई खरदूषण को पकड़ लिया। यह देख रावण ने युद्ध बन्द कर दिया, और मंत्रियों से मन्त्रणा कर सब देशों के राजा के पास दूत भेजे और यह समाचार लिख भेजा कि वे अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर शीघ्र ही लंका में उपस्थित होवें।

राजा प्राह्लाद के पास भी दूत आया। राजा ने स्वामी भक्तिवश दूत का सन्मान किया और पत्र माथे चढ़ाया। जब राजा प्राह्लाद रावण के समीप जाने को उद्यमी हुआ। तब पवनकुमार हाथ जोड़ विनती करने लगा- "हे नाथ ! पुत्र के होते तुम्हें जाना युक्त नहीं। पुत्र का धर्म है कि पिताकी सेवा करे। इसलिये हे तात ! मुझे जाने की आज्ञा दो।"

राजा प्राह्लाद बोला- "हे पुत्र ! तुम अभी सुकुमार हो। तुमने कोई रणक्षेत्र नहीं देखा, इसलिये तुम यहीं रहो।"

पवनकुमार बोला- "हे पिताजी! क्षत्रिपुत्र बालक नहीं होता है। जैसे सिंह का बच्चा ही हाथियों के झुण्डको चकचूर कर देता है और जैसे

बड़े-बड़े मोती थे, जिनके योग से पिता को उनमें पुत्र के नव प्रतिबिंब दिखाई दिये। तब रत्नश्रवाने निश्चय किया कि अब बालक के कण्ठ में से हार न निकाला जाय। इसही से रावण का नाम दशमुख या दशानन भी प्रसिद्ध है।

अग्निका एक स्फुलिंग-मात्र ही बड़े भारी वन को भस्म कर देता है वैसे ही मैं भी शुत्रको जीत विजय पा अभी ही पीछे आता हूँ।''

पिता ने आशीर्वाद दिया-''हे पुत्र! तेरी जय हो'' तब पनवकुमार ने जिनदेव की पूजा की और माता-पिता को प्रणाम कर विदा हुआ। बाहर निकला, तो कुमार को आभूषण रहित मलिन वदना और अश्रु बहाती हुई अंजना पर दृष्टि पड़ी। उसे देख वह बोला-''हे पापिनी ! मना करने पर भी ढीठ हो निर्लज्जता से सामने आ खड़ी हो गई।'' पति के ये अति क्रूर वचन उसे ऐसे प्रिय लगे, जैसे बहुत दिन की प्यासी मयूरी को मेघ बिन्दु लगे।

पति के वचन मनसे अमृत समान पी वह हाथ जोड़कर कहने लगी-''हे नाथ ! जब आप यहाँ बिराजते थे तब भी मैं वियोगिनी ही थी, अब आप निकट हैं इस आशा से मेरे प्राण कष्ट से टिक रहे हैं। जब आप दूर देश जावेंगे तो मैं कैसे जीऊँगी ? आपने नगर के सब लोगों को तो श्रीमुख से दिलासा दिया और मुझे औरों के ही मुख से दिलासा दिलाया होता। जब आपने मुझे तजी तो जगत में मुझे शरण नहीं, मरण है।'' कुमार कोप कर 'मर' ऐसा कह चला गया और हाथी पर आरूढ़ हो रवाना हुआ। सती अंजना खेद-खिन्न हो पृथ्वी पर गिर पड़ी।

पहिले ही दिन मानसरोवर के तट संध्या हो गई, तब कुमार ने वहीं पड़ाव किया। विद्या के प्रभाव से एक बहुखणा महल बना उसी के छत पर बैठे पवनकुमार मित्र प्रहस्त से बातें कर रहा था कि इतने में किसी पक्षी की आवाज सुनाई दी। उधर दृष्टि की तो देखा

कि एक चकवी अपने चकवे की वियोगरूप अग्नि से तप्तायमान हो नाना प्रकार की चेष्टाएँ कर रही है। अस्ताचल की ओर सूर्य गया सो उधर ही देख रही है; परों को हिला उड़ती है परन्तु गिर पड़ती है; और अपना प्रतिबिम्ब पानी में देख उसे प्रियतम समझ पुकारती है, परन्तु वह आवे क्यों ?

सेना की नाद से भयभीत हो उसका चित्त चकवे की आशा में भ्रम रहा है, नेत्रों से अश्रुधाराएँ बह रही हैं, और तटके वृक्षपर चढ़कर दशों दिशाओं में देख रही है, परन्तु प्राणवल्लभ को न देख धरती पर आ पड़ती है। यह देख कुमार का मन दया से आर्द्र हो गया। वह विचार ने लगा कि यह चकवी प्रियतम के वियोगरूप शोकाग्नि से जल रही है; चन्द्रमा की चन्दन समान शीतल चाँदनी से दावानल समान, कोमल पल्लव खड्ग समान, चन्द्रकिरण वज्र समान और स्वर्ग भी नर्क समान भासता है। ऐसा सोचते-सोचते उसे अंजना की याद आई और समीप ही व्याह का स्थान देख उसका हृदय भिद गया। वह विचार ने लगा कि अब यह चकवी एक ही रात्रि का वियोग सहन नहीं कर सकती है तो वह अंजना, जिसको मुझ पापी ने बावीस वर्ष से त्याग दी है, कैसे जीवती होगी ? हाय! मुझ वज्र हृदय ने उस निर्दोष महासती को वृथा त्याग दी है। अब मैं क्या करूँ? पिता से विदा लेकर निकला हूँ सो वापिस कैसे जाऊँ ? बड़े संकट की बात है। यदि मैं उसे बिना मिले संग्राम के लिए जाऊँगा, तो वह निश्चय ही मरण को प्राप्त हो जायेगी और उसके अभाव से मेरा भी अभाव होगा।

मित्र प्रहस्त, जो मित्र के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी रहता था, कुमार को चिंताग्रस्त देख पूछने लगा-"तुम्हें इस अवस्था में

देख मेरा मन व्याकुल हो रहा है, इसलिए लज्जा छोड़ मुझे सर्व हाल कहो।" कुमार ने सब वृत्तांत कह सुनाया। प्रहस्त क्षणैक विचार कर बोला-"हे मित्र ! तुम युद्ध के लिए घर से माता-पिता की आज्ञा ले निकले हो, सो पीछे जाना युक्त नहीं, और यदि अंजना को यहाँ बुलवावें, तो वह भी लज्जा की बात है, इसलिए वहाँ पर गुप्त रीति से चलें और उससे आनन्द रूप सुख संभाषण कर शीघ्र ही सूर्योदय के पहिले ही वापिस चले आयेंगे। ऐसा करने से तुम्हारा चित्त निश्चल हो जायेगा और शत्रुको जीतने का निश्चय से यही उपाय है।"

पवनकुमार मुद्गर नामा सेनापति को कटक की रक्षा सौंप, सुगन्धादि सामग्री ले प्रहस्त सहित आकाश-मार्ग से अंजना के महल पर गुप्त रीति से गया। पवनकुमार बाहर खड़ा रहा और मित्र प्रहस्त समाचार देने को भीतर गया। उसने हाथ जोड़ अंजना को पवनंजय के आने के हाल कह सुनाये, तब अंजना बोली-"हे प्रहस्त ! मैं पुण्यहीन पाप-कर्म के उदय से पति की कृपा रहित हूँ, सो तुम क्यों वृथा हँसी करते हो ?"

प्रहस्त बोला-"हे पतिव्रते ! अब तेरे सब अशुभ कर्म नष्ट हुए हैं और तेरा प्राणनाथ तुझ से प्रसन्न हो यहाँ आया है।"

वसंतमाला बोली-"हे भद्र ! मेघ बरसे तब ही भला, इसलिए इसके प्राणनाथ इसके महल में पधारें, तो इसका बड़ा भाग्य हो।" इतने में पवनकुमार भीतर आ गये, पति को देख महासती अंजना ने हाथ जोड़ मस्तक नमाय पैर पड़े ! कुमार ने उसका मस्तक अपने कर से उठा, उसका कर गह सेज पर बैठाई । प्रहस्त नमस्कार कर बाहर चला गया और वसंतमाला भी अपने स्थान को गई।

पवनकुमार लज्जित हो सुन्दरी से बारम्बार कुशल पूछने लगा

और उसका जो वृथा निरादर किया था उसकी क्षमा माँगने लगा।

अंजना बोली-"हे नाथ ! इसमें आपका क्या दोष है ? दोष तो मेरे पूर्वोपार्जित पापकर्मों का ही है। आप मेरी इतनी विनय क्यों करते हो ? मैं तो आपके चरण की रज हूँ।" उन दोनों को परस्पर प्रेमालाप करते देख निद्रा देवी भाग गई, परन्तु पिछले पहर उसने अपना अधिकार उन पर जमा लिया। प्रभात का समय हो आया, तब मित्र प्रहस्तने कुमार को जगवाय, उसे रात्रि की कुशल पूछ कहने लगा-"हे मित्र ! अब चलें, प्रियाजी का सन्मान फिर आकर करना और कोई न जाने इस प्रकार लौट चलें, अन्यथा लज्जित होना होगा।"

पवनकुमार बोला-"हे मित्र! ऐसा ही करना चाहिये।" तब प्रहस्त तो बाहर गया और कुमार प्राणवल्लभ को अति स्नेह से उरसे लगा कहने लगा-"हे प्रिये ! अब हम जाते हैं, तुम उद्वेग मत करना। थोड़े ही दिनों में हम स्वामी का कार्य कर आते हैं और फिर अपन आनंद से रहेंगे।"

अंजना बोली-"हे महाराज कुमार ! मेरा ऋतु समय है इसलिये गर्भ स्थिति का संभव है। अब तक आप की मेरे ऊपर कृपा-दृष्टि न थी, सो सब ही लोग जानते हैं, इसलिये मेरे कल्याण के निमित्त अपने आगमन का समाचार माता-पिता से कहते जाना।"

पवनकुमार बोला-"हे प्यारी ! हम माता-पिता से आज्ञा ले विदा हुए हैं, सो अब उनके समीप जाने में लज्जा आती है और यदि लोग सुनेंगे तो हास्य करेंगे। तुम्हारे गर्भ प्रकट होने के पहिले ही हम लौट आयेंगे। तुम चित्त प्रसन्न रक्खो, और यदि कोई पूछे तो लो, हमारी मुद्रिका दिखाना।" ऐसा कह पवनकुमार अंजना को मुद्रिका दे और उससे बिदा हो, वह मित्र सहित कटक में आ गया।

अंजना को वनवास

कुछ काल व्यतीत होने पर अंजना के गर्भ के चिह्न प्रकट हुए। सासु केतुमती उसे गभिर्णी देख पूछने लगी-"हे चांडालिनी। यह कर्म तूने किसके साथ किया?" अंजना ने हाथ जोड़ प्रणाम कर पति के आगमन का सर्व वृत्तांत कह सुनाया।

केतुमती बोली-"हे पापिनी ! मेरा पुत्र तो तुझसे बहुत विरक्त है। वह न तो तेरा मुख देखना चाहता है और न तेरे शब्द सुनना चाहता है; और वह हमारी आज्ञा ले संग्राम को गया है, फिर वह तेरे पास कैसे आ सकता है ? हे निर्लज्जे ! धिक्कार है तुझ पापिनी को जिसने चन्द्रमा की किरण समान हमारे उज्ज्वल वंश को कलंक लगा दिया! इस वसंत माला सखी ने तुझे ऐसी बुद्धि दिखाई है। वेश्या के पास कुलटा रहे, तो काहे की कुशल ?"

अंजना ने विश्वासार्थ सासु को पति की दी हुई मुद्रिका दिखाई, परन्तु उसने न मानी और क्रूर नामा एक किंकर को बुला उसे आज्ञा दी कि उन दोनों को गाड़ी में बैठाय महेन्द्रपुर के समीप छोड़ आवे। तब क्रूर नामा किंकर उन्हें गाड़ी में बैठा महेन्द्रपुर के समीपवर्ती वन में छोड़ कहने लगा-"हे देवी ! मैंने अपनी स्वामिनी की आज्ञा से तुम्हें दुःख का कार्य किया है सो क्षमा करना।"

महासती अंजना को देख सूर्य की प्रभा चिंता से मन्द हो गई। धीरे-धीरे दशों दिशाएँ अंजना के अश्रुओं से बने हुए बादलों से श्याम हो गईं। पक्षी कोलाहल करने लगे, मानों अंजना के दुःख से दुःखित हो वे पुकार कर रहे हों। रात्रि को वसंतमाला ने पल्लवों का साथरा

बिछा दिया, परन्तु उस सती के अश्रुओं की गर्मी से निद्रा पलायन कर गई, रात्रि वर्ष बराबर बीती। जब प्रभात हुआ, तो वह अति विह्वल हो पिता के घर की ओर चली। जब वह महल के द्वार पर पहुँची, तो दुःख से विकृतरूपा अंजना को द्वारपाल ने न पहिचान, अन्दर जाने से मना किया। जब सखी ने सर्व वृत्तान्त कह सुनाया, तो द्वारपालने भीतर जा राजा से विनती की-हे महाराज! आपकी पुत्री आई है तो राजा ने अपने प्रसन्नकीर्ति नामा पुत्र को सन्मुख जा अंजना को लाने की आज्ञा दी, परन्तु द्वारपाल के यथार्थ विनती करने पर राजा ने लज्जा कारण सुन महाकोपायमान हो पुत्र को आज्ञा दी कि उस पापिनी को नगर से बाहर निकाल दो।

तब महोत्सव नामा मन्त्री बोला-"हे राजन्! ऐसी आज्ञा उचित नहीं। वसंतमाला से सब ठीक कर लो, सासु केतुमती महा क्रूर है, इसलिये उसने उससे झूठा दोष लगा निकाल दी है, और अब तुम भी उसे निकाल दो, तो वह किसके शरण जाय।"

महोत्सव सामन्त के ये न्याययुक्त वचन उसने ऐसे बहा दिये, जैसे कमल पत्र जल बिन्दुओं को अपने पर न ठहरने दे, और कहने लगा-"यह वसंतमाला जो उसके पास सदा रहती है, कदाचित् उसके स्नेह से सत्य बात न बतावे, तो हमें कैसे निश्चय हो ? अंजना के शील में सन्देह है, इसलिए उसे नगर के बाहर निकाल दो और नगर-निवासियों को भी आज्ञा दे दो कि उसे कोई आश्रय न दे।"

तब अंजना कहने लगी-"हे सखे ! यहाँ सब पाषाणचित्त बसते है, इसलिये वन में चलें। अपमान से तो मरना ही भला है।" ऐसा कह वह सिंह से भयभीत मृगी की नाईं वन की ओर चली। गर्भ के

भार से आकाश मार्ग से जाने को असमर्थ अंजना सखी के काँधे पर हाथ धर महाकष्ट से पैर रखने लगी। वन अनेक अजगरों से पूर्ण, दुष्ट जीवों के नाद से अत्यन्त भयानक और अति सघन है, जहाँ अति तीक्ष्ण कंकर और भीलों के समूह बहुत हैं। धीरे-धीरे वह पहाड़ की तलहटी तक आई और वहाँ आँसूभर बैठ गई और बसंतमाला को कहने लगी-"हे सखे ! मैं एक पैर भी आगे नहीं धर सकती हूँ। अब मैं यहाँ से आगे न चलूँगी। चाहे मृत्यु भी आजाय, तौ भी मैं यहाँ से न हटूँगी"

सखी उसे मधुर वचनों से शांति उपजा कहने लगी-"हे देवी! देखो, यह एक गुफा सामने ही है। कृपा कर यहाँ से उठ वहाँ सुख से बैठना। यहाँ क्रूर जीव विचरते हैं और तुम्हें गर्भ की रक्षा करनी चाहिये, सो हठ मत करो।" तब वह आताप की मारी सखी के वचन से और वन के भय से चलने को उद्यत हुई और सखी उसे हस्तालंबन दे, विषम भूमि से निकाल गुफा के द्वार पर ले गई । बिना विचारे गुफा में प्रवेश करने के भय से और विषम मार्ग के श्रमसे वे दोनों एक पत्थर पर बैठ गईं और गुफा में देखने लगीं। वहाँ पर एक पवित्र शिला पर कोई चारण मुनि विराजमान थे, सो वे उन्हें दिखे। वे दोनों सब दुःखको भूल, मुनि के समीप गईं और तीन प्रदक्षिणा दे, हाथ जोड़ मुनि के चरणों में अश्रुरहित निश्चल नेत्र लगाकर विनती करने लगीं-"हे कल्याणरूप! आपके शरीर में कुशल तो है?"

मुनि अमृततुल्य परम शांत वचन कहने लगे-"हे कल्याण रूपीणियाँ ! हमारे कर्मानुसार तो सब कुशल है। यह सब जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार फल भोगते हैं। देखो कर्म की विचित्रता! राजा

महेन्द्र ने अपनी निर्दोष पुत्री को निकाल दी है।'' सो सर्व वृतान्त के ज्ञाता मुनि को नमस्कार कर वसंतमाला पूछने लगी-

'हे नाथ ! कौन कारण पवनकुमार इस अंजना से उदास हुए फिर किस कारण अनुरागी हुए और कौन मंदभागी इसके गर्भ में आया है जिससे इसका जीवन संशय में है?'

तब स्वामी अमितगति तीन ज्ञानधारी सर्व वृत्तान्त यथार्थ कहने लगे-''हे पुत्री! इस गर्भ में कोई उत्तम पुरुष आया है और जो यह दुःख भोग रही है वह पूर्वोपार्जित कर्मों का फल है सो सुनो।''

इस भरतक्षेत्र में विजियार्धगिरि पर अहनपुर नामा नगरी में राजा सुकंठ राज्य करता था, उसकी महा शीलवती कनकोदरी नामा रानी के गर्भ में देवलोक से एक जीव आया। जब वह जन्मा तो उसका सिंहवाहन नाम रक्खा। वह पुत्र महा गुणवान और रूपवान था। बहुत राज्य कर वह एक दिन विमलनाथ स्वामी के समोशरण में गया, जहाँ उससे आत्मज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हुआ, तब अपने पुत्र लक्ष्मीवाहन को राज्य दे वह लक्ष्मीतिलक मुनि का शिष्य हुआ, और महा दुष्कर तप कर सातवें लांतव नामा स्वर्ग में देव हुआ, परन्तु स्वर्ग के सुख से मग्न न हो, वहाँ से परमधाम की इच्छा से चयकर इस अंजना की कुक्षि में आया है। ये महा सुखके भाजन हैं। पुनः देह न धारेंगे और अविनाशिक सुखको प्राप्त होंगे। यह तो पुत्र के गर्भ में आने का वृतान्त हुआ। अब हे कल्याण चेष्टिनी ! इस अंजना ने किस कारण से पति से विरह और कुटुम्ब से निरादर पाया सो सुनो-

पूर्व भव में इस अंजनासुन्दरी पटरानी के अभिमान में सौतन पर क्रोध कर देवाधिदेव श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा मंदिर से बाहर एक

बावड़ी के जल में छुपाई थी। उस ही समय एक संयमश्री आर्यिका ने यह देख इसे अज्ञानरूप जान महादयावती हो उपदेश दिया, क्योंकि श्री गुरु की आज्ञा से साधुजन बिना किसी के कहे जीवों को समझाने के निमित्त उपदेश देते हैं-

"हे भोरी ! पूर्वोपार्जित पुण्यों के फल से तू राजा की पटरानी हुई है और महारूप पाया है और राजा की प्रेम पात्र हुई है। जीव इन चतुर्गतियों में महादुःख को भोगता हुआ भ्रमण करता है, और अनंतकाल में पुण्य के योग से मनुष्य-देह पाता है, इसलिये तू यह निंद्य कार्य मत कर, हे शोभने !

संसार में जो दुःख दिखाई देते हैं वे सब पाप के और जो सुख दिखाई देते हैं वे सब पुण्य के फल हैं, अब तू ऐसा कर, जिससे तू फिर सुख पावे और अपना कल्याण करे। हे भव्ये ! सूर्य और नेत्र के होते हुए कूप में न पड़। ऐसा कार्य करेगी तो घोर नरक में पड़ेगी। देव, गुरु और शास्त्र का अविनय करना महादुः ख दाई है। ऐसा दोष देख यदि मैं तुझे न सम्बोधूँ तो मुझे भी प्रमाद का दोष लगता है।

यह सुन वह नर्क के दुःख से डरी। उसने सम्यक् धारण किया और श्राविका के धर्म आदरे। श्रीजी को मंदिर में पधराए और बहु विधान से अष्ट प्रकार की पूजा की। अन्त समय वह समाधिमरण कर स्वर्ग लोग में गई। वहाँ सुख भोग राजा महेन्द्र की रानी हृदय वेगा की कुक्षि में तू अंजना हुई है।

पुण्य के प्रभाव से तूने उत्तम कुल और उत्तम वर पाया है, और जो जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा को बावीस घड़ी पानी में रक्खी

थी उसके पाप से तेरा पति से बावीस वर्ष का वियोग और कुटुम्ब से निरादर हुआ है।

विवाह के तीन दिन पहिले वायुकुमार रात्रि में प्रछन्नरूप आये थे और तेरे महल के झरोखे में बैठे थे, उस समय मिश्रकेशी ने विद्युत्प्रभ की स्तुति और पवनकुमार की निंदा की, जिससे वह द्वेष को प्राप्त हुआ, फिर युद्ध के लिये घर से निकल मानसरोवर पर डेरा किया, वहाँ संध्या समय चकवी का विरह देख करुणा उत्पन्न हुई, और रात्रि को गुप्त रीति से तेरे महल में आया और तुझे ऋतुदान दिया, जिससे तू गर्भवती हुई है।

हे बालके ! तू कर्म के उदय से ऐसे दुःख को प्राप्त हुई है। अब तू संसार-समुद्र से तारने वाले श्री जिनेन्द्रदेव की भक्तिकर, क्योंकि इस पृथ्वी पर जो सुख है, वह सब जिनदेव की भक्ति के प्रभाव ही से है। हे पुत्री ! अब तू यथा शक्ति नियम ले और जिनधर्म का सेवन कर और यह बालक जो तेरे गर्भ में आया है वह महाकल्याण का भोजन है।

इस पुत्र के प्रसाद से तू परम सुख पावेगी। तेरा पुत्र अखंड वीर्य है, थोड़े ही दिनों में तेरा पति तुझे आ मिलेगा, इसलिये हे भव्ये ! तू चित्त में खेद न कर और प्रमाद रहित शुभ क्रिया में उद्यमी हो।" ऐसा धर्मोपदेश दे मुनिराज आकाश-मार्ग से विहार कर गये।

मुनिराज के वचन सुन अंजनासुन्दरी और वंसतमाला बहुत प्रसन्न हुईं और मुनि के बिराजने से पवित्री कृत गुफा में पुत्र प्रसूति का समय देखती रहने लगीं।

हनुमानजी का जन्म

अथानन्तर उस गुफा के मुख पर एक महाभयंकर सिंह आया और महाविषम शब्द से वन को ऐसा गुञ्जारने लगा, मानो भय से पहाड़ रोते हों। उस शोचनीय दशा में अंजना ने यह प्रतिज्ञा की कि यदि इस उपसर्ग से मेरा शरीर जाय, तो मेरा अनशन व्रत है और यदि उपसर्ग टले तो भोजन लूँ।

सखी वसन्तमाला बहुत विह्वल हो हाथ में खड्ग ले कभी आकाश में जाती और कभी भूमि पर आती। उसी गुफा में एक मणिचूल नामा देव रहता था जिसकी रत्नचूडा नामा महादयावती स्त्री थी। वह यह उपसर्ग देख पति से बोली-"हे देव ! देखो, ये दो स्त्रियाँ सिंह से महा भयभीत हैं सो तुम इनकी रक्षा करो।"

तब गन्धर्वदेव को दया उत्पन्न हुई और उसने तत्काल अष्टापदका रूप धारण कर सिंह को ऐसा भगाया जैसे सर्प को गरुड़ भगाता है, फिर वह गन्धर्व आनन्दित हो ऐसा गाने लगा, जिससे मनुष्य तो क्या, देवतक भी मुग्ध हो जावें।

एक दिन अंजना सखी से बोली-"हे सखी, आज मुझे कुछ व्याकुलता है।" वसन्तमाला बोली-"हे शोभने, तेरा प्रसूति-समय आया है सो तू आनन्दित हो," ऐसा कह उसने कोमल पल्लवों की एक सेज रची, जिस पर पुत्र का जन्म हुआ।

जैसे पूर्व दिशा सूर्य को प्रगट करती है तैसे अंजना ने हनुमान जी को जन्म दिया। गुफा अन्धकार रहित हो प्रकाश रूप हो गई। अंजना पुत्र को छाती से लगा कहने लगी-

"हे पुत्र ! तू ऐसे गहन वन में उत्पन्न हुआ है इसलिये मैं तेरा जन्मोत्सव नहीं कर सकती। यदि तू तेरे दादा या नाना के घर जन्म लेता, तो बड़ा भारी जन्म-महोत्सव होता। तेरा चन्द्रमुख देख कौन आह्लादित न होता? क्या करूँ मैं मन्दभागिनी ! सर्व वस्तुरहित हूँ। पूर्वोपार्जित कर्मों ने मुझे ऐसी दुःखी बनाई है कि मैं कुछ नहीं कर सकती हूँ। प्राणियों को सबसे अधिक दुर्लभ वस्तु दीर्घायु है सो हे पुत्र ! तू चिरंजीव हो। तू है तो मेरा सर्व है।"

अंजना के मुख से ऐसे दिन वचन सुन वसन्तमाला बोली-

"हे देवी ! तू कल्याण-पूर्णी है। इसके सुन्दर रूप और शुभ लक्षण से वह महाऋद्धि का धारक होगा ऐसा दिखाई देता है। देख, तेरे पुत्र के उत्सव में मानो यह बेलरूप बनिता जिसके पल्लव चलायमान हैं नृत्य कर रही है और भ्रमर गुञ्जार रहे हैं वे मानों संगीत कर रहे हैं।"

अथानन्तर वसन्तमाला ने आकाश-मार्ग से जाता हुआ सूर्य के तेज समान प्रकाशरूप एक विमान देखा और अपनी स्वामिनी से कहा, तब अंजना यह समझ कि कोई निः कारण बैरी मेरे पुत्र को हर ले जायेगा, रुदन करने लगी। उसका विलाप सुन विद्याधर ने आकाश से विमान उतार गुफा के द्वार पर थाँभा और स्त्री सहित उसमें प्रवेश किया।

वसन्तमाला ने उनका सत्कार किया और आसन दिया। विद्याधर वसन्तमाला से पूछने लगा-"हे शुभानने ! यह बाई कौन है ? किसकी पुत्री है, किसकी प्राणवल्लभा है और किस कारण वन में रहती है ?"

तब वसंतमाला, जिसका कंठ दुःख से भर आया था, नीची दृष्टि

कर बड़े कष्ट से बोली-"हे महानुभाव! तुम्हारे वचन हीसे तुम्हारे अन्तः करण की शुद्धता पाई जाती है। यदि तुम्हें इसके दुःख के सुनने की इच्छा है तो मैं कहती हूँ। यह जगत् प्रसिद्ध, महायशवान्, नीतिवान, निर्मल स्वभाव राजा महेन्द्र की पुत्री है। और प्राह्लाद के पुत्र पवनकुमार की प्राणवल्लभा है। एक समय वह कुमार पिता की आज्ञा ले रावण के निकट जा रहा था, वह कुमार मानसरोवर के तट से रात्रि में इसके महल में आया, और ऋतुदान दे सुबह होने के पहिले ही चला गया, जिससे इसके गर्भ की स्थिति हुई।

सासु केतुमति ने इसके शील की शंका कर इसे पिता के घर पठा दी। पिता ने भी अपयश के भय से इसे निकाल दी। सो यह बड़े कुल की बालिका आलंबन रहित हो यूथ से बिछड़ी हुई मृगी की नाईं इस वन में रहती है। यह वन महा उपसर्ग का स्थान है, न जाने इसे कब सुख होगा?"

तब वह हनूसह द्वीपका प्रतिसूर्य नामा राजा बोला-"हे भव्ये! मैं राजा चित्रभानु और रानी सुन्दर मालिनी का पुत्र हूँ। अंजना मेरी भानजी है। उसे मैंने बहुत दिनों से नहीं देखी थी इसलिये नहीं पहिचानी।" ऐसा कह उसने अंजना को बाल्यावस्था से ले सब हाल कह सुनाए। पूर्व वृत्तान्त सुन अञ्जना उसे मामा जान उसके गले लगी और बहुत रोई। राजा प्रतिसूर्य और उसकी रानी भी बहुत रोई, जिससे वन शब्द मई हो गया।

कुछ काल पश्चात् उसने जल से अंजना का मुख प्रक्षालन कराया और आपने भी वैसा किया। वन भी शब्द रहित हो गया, मानों वह इनकी वार्ता सुनना चाहता हो। अंजना ने मामी से क्षेम कुशल पूछी और मामा से कहने लगी-

"हे पूज्य! मेरे पुत्र का समस्त शुभाशुभ वृत्तांत ज्योतिषियों से पूछो।" तब सावंतसर नामा ज्योतिषि जो साथ में था, बोला कि बालक की जन्म-वेला बताओ। वसंतमाला बोली कि आज ही अर्द्ध रात्रि गये पुत्र का जन्म हुआ है। ज्योतिषी लग्न स्थाप, बालक के शुभ लक्षण जान यों कहने लगा-

"यह बालक मुक्ति का भाजन है, फिर जन्म नहीं लेगा। यदि तुम्हें शंका है तो मैं संक्षेप में कहता हूँ सो सुनो।

चैत्र शुक्ल अष्टमी की तिथि है, श्रवण नक्षत्र है, मेषका सूर्य उच्च है, शुक्र तथा शनैश्चर दोनों मीन के हैं, सूर्य पूर्ण दृष्टि से शनि को देखता है, मंगल दश विश्वा सूर्य को देखता है, बृहस्पति पंद्रह विश्वा सूर्य को देखता है, सूर्य दश विश्वा बृहस्पति को देखता है। वृहस्पति पूर्ण दृष्टि चंद्रमा को देखता है। चंद्रमा बृहस्पति को देखता है, बृहस्पति शनैश्चर को पंद्रह विश्वा देखता है, शनैश्चर बृहस्पति को दश विश्वा देखता है, बृहस्पति शुक्र को पंद्रह विश्वा देखता है और शुक्र बृहस्पति को पंद्रह विश्वा देखता है। इसके सब ही ग्रह बलवान बैठे हैं।

सूर्य और मंगल दोनों इसका अद्भुत राज्य निरूपण करते हैं और बृहस्पति और शनि मुक्तिके दाता हैं। जो एक बृहस्पति उच्च स्थान बैठा है, सो सर्व कल्याण की प्राप्ति का कारण है, और ब्रह्मनामा योग है, और मुहूर्त शुभ है, सो इसे अविनाशी सुख का समागम होगा, इस प्रकार सब ही ग्रह बलिष्ठ हैं।

राजा प्रतिसूर्य ने ज्योतिषी को बहुत दान दिया, और भानजी से बोला-"हे वत्से ! हम सब हनूसह द्वीप को चलें और वहाँ बालक

का जन्मोत्सव भलीभाँति होगा।" अंजनाने मामा के परिवार सहित गुफा को छोड़ी, और विमान में बैठ आकाश-मार्ग से हनूसह द्वीप के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में बालक कौतुक से मुकलता हुआ माता की गोदमें से उछला, जिससे वह विमान में से गिर गया!

यह देख अंजना और प्रतिसूर्य और उसके परिवार के सब लोग हाहाकार कर विलाप करने लगे। अंजना अति दीन-बदल हो रुदन करने लगी-"हाय पुत्र! यह क्या हुआ? हाय! निर्दयी दैवने मुझे रत्न संपूर्ण निधान दिखाकर फिर छीन लिया और पति के वियोग से मुझ दुःखित का पुत्र रूप आलंबन खींच लिया! अब मेरे जीवन में क्या सार है ?"

तब राजा प्रतिसूर्य बालक के लिये नीचे उतरा, तो उसने देखा कि-बालक एक शिलापर सुख से अपना अँगूठा चूसता क्रीड़ा कर रहा है और पहाड़ के हजारों खंड हो गये हैं। यह देख वह आश्चर्यित हुआ, उसने उसे उठाकर अंजना को सौंपा। माता ने भी विस्मित हो उसका सिर चूमा और छाती से लगा लिया।

राजा प्रतिसूर्य अंजना से कहने लगा-"हे बालके! यह बालक महावज्र रूप है, जिसके पड़ने से पहाड़ चूर्ण हो गया। जब इसकी बाल्यावस्थाही में देवताओं से अधिक अद्भुत शक्ति है तो फिर यौवनावस्था की शक्ति का कहना ही क्या है ? यह निश्चय चरम शरीरी है।"

जब राजा प्रतिसूर्य अपने नगर के समीप आया, तब नगर के सब लोग नाना प्रकार के मंगल द्रव्यों सहित सन्मुख आये। राजा ने राजमंदिर में प्रवेश किया और महान जन्मोत्सव किया। पर्वत में जन्म होने से और उस पर गिरने से उसका चूर्ण कर डालने से बालक का नाम श्री "शैल" रक्खा गया और हनूसह द्वीप में जन्म महोत्सव होने से "हनूमान" नाम पृथ्वी पर प्रसिद्ध हुआ।

पवनकुमार का अंजना के विरह में वन में फिरना

पवनकुमार कटक ले पवन की नाईं शीघ्र ही रावण के निकट गया, और आज्ञा पा वरुण से युद्ध करने लगा। बहुत काल तक नाना प्रकार के शस्त्रों से उन दोनों में युद्ध होता रहा। अन्त में पवनकुमार ने वरुण को बाँध लिया और खरदूषण को छुड़ाया, वरुण ने रावण की सेवा अंगीकार की।

रावण पवनकुमार से अति प्रसन्न हुआ और उसे बहुतसा पारितोषिक दे विदा दी। पवनकुमार रावण से विदा हो अंजना के प्रेम से शीघ्र ही घर को चला। पिता ने पुत्र का विजयी हो लौट आना सुन नगर को ध्वजा-तोरणादि से शोभित किया और सब परिजन पुरजन-सन्मुख आये।

कुमार ने माता-पिता से प्रणाम कर सबका मुजरा लिया और क्षणिक सभा में बैठ सबकी सुश्रूषा की। फिर कुमार प्रहस्तको साथ ले अंजना के महल में गया, परन्तु उसे वहाँ न पा मित्र से बोला- "हे मित्र ! प्राणप्रिया बिना यह महल जंगलसा भासता है, इसलिये तुम किसी से पूछो कि मेरी प्रिया कहाँ है ?"

तब प्रहस्त ने बाहिर के लोगों से सब वृत्तान्त निश्चय कर कुमार को कह सुनाया। वह हाल सुन कुमार का हृदय क्षोभित हुआ। माता-पिता से बिना पूछे वह मित्र सहित महेन्द्र के नगर की ओर चला। राजा महेन्द्र ने पवनकुमार का विजयी हो पिता से मिल महेन्द्रपुर का आना सुन नगरी की बड़ी शोभा कराई और आप अर्घादिक उपचार ले सन्मुख आया और बहुत आदर से कुँवर को नगर में ले गया।

कुमार ने राजमंदिर में प्रवेश किया और क्षणिक ससुर के समीप विराज सबका सन्मान किया और यथा योग्य वार्तालाप किया। राजा से आज्ञा ले अन्तः पुर में जा सासु का मुजरा किया और फिर प्रिया के महल पधारा। वहाँ भी प्राणवल्लभा को न देखकर अति विरहातुर हो एक दासी से कुमार ने पूछा-"हे बालके ! हमारी प्रिया कहाँ है?" वह बोली-"हे देव ! यहाँ तुम्हारी प्रिया नहीं है। महाराज ने उसे न रक्खी, इसलिये न जाने वह कहाँ गई है।" ये शब्द कुमार को वज्रपात समान लगे, मुखकमल मुरझा गया और शरीर जीव रहित हो गया। तब ससुर के नगर से निकल वह अंजना की खोज के लिये पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा, मानों पवनकुमार को पवन ही लगी हो, उसे बहुत आतुर देख प्रहस्त बोला-

"हे मित्र ! खेद-खिन्न क्यों होते हो ? यह पृथ्वी कौन बड़ी है? जहाँ होगी वहाँ से ढूँढ़ निकालेंगे।"

कुमार बोला-"हे मित्र ! अंजना बिना यह संसार मुझे असार लगता है। मैं सब पृथ्वी पर उसे ढूँढूंगा और यदि वह न मिलेगी, तो मैं भी नहीं जीऊँगा। तुम आदित्यपुर जाओ और मेरे माता-पिता से सब वृत्तान्त कह सुनाना।"

पवनकुमार का अति आग्रह देख प्रहस्त आदित्यपुर को लौट गया और राजा प्राह्लाद को सब हाल कह सुनाया। प्राह्लाद बहुत दुःखित हुआ और रानी केतुमति भी पुत्र के शोक से रुदन करती कहने लगी-"हे प्रहस्त ! जो तूने मेरे पुत्र को अकेला छोड़ दिया सो ठीक नहीं किया।"

प्रहस्त बोला-"हे माता ! कुमार ने बहुत ही आग्रह कर मुझे

तुम्हारे पास भेजा है, परन्तु अब मैं उसके निकट जाता हूँ।''

रानी ने पूछा-''वह कहाँ है?''

प्रहस्तने उत्तर दिया-''जहाँ अंजना वहाँ वह होगा।''

रानी-''अंजना कहाँ है?''

प्रहस्त-''मैं नहीं जानता, हे माता ! जो बिना विचारे कोई काम करता है तो उसे पछताना पड़ता है। कुमार ने यह निश्चय किया है कि यदि मैं त्रियाको न पाऊँगा, तो प्राण त्याग करूँगा।'' यह सुन केतुमति बहुत पश्चात्ताप करने लगी।

उधर पवनकुमार अम्बर गोचर हाथी पर चढ़ पृथ्वी पर विचरने लगा। उसके हृदय में यह चिंता व्यापने लगी कि वह कमल वदना, जिसके चित्त में मेरा ही ध्यान है, शोकाग्नि से संतप्त हो कहाँ गई होगी ? कहीं गर्भाभार से पीड़ित हो वह प्राणरहित न हो गई हो अथवा दुःख से नेत्रांधा हो कहीं अजगर सेवित कूप में न पड़ गई हो ! इस भयंकर वन में प्यास से अर्दित हो कहीं वह भोली गंगा में उतरी हो और बह न गई हो अथवा अति तीक्ष्ण कंकर और कंटकों से विदारित पद हो एक पैर भी न चल सकने से न जाने उसकी क्या दशा हुई होगी ? कहीं दुःख से गर्भपात न हुआ हो और वह महा विरक्त हो आर्या न हो गई हो ? प्रिया को कहीं भी न पा उसे संसारशून्य लगने लगा। उसका मन न पर्वत में, न मनोहर वृक्षों में और न नदी के तट लगता। वह इतना विवेक रहित हो गया कि सुन्दरी की बातें वृक्षों से पूछने लगा।

भ्रमण करता-करता वह भूतरवर नामा वन में आया, वहाँ हाथी से उतर प्राणवल्लभा का ऐसा ध्यान करने लगा जैसे कोई मुनि आत्मा

का ध्यान धरता हो। फिर हथियार और वस्त्र पृथ्वी पर डाल, गजेन्द्र से कहने लगा-

"हे गजेन्द्र ! अब तुम स्वेच्छाचारी होओ। इस नदी के किनारे शल्ल की वन है सो वहाँ उसके पल्लव चरते विचरो और यहाँ हथिनियों के समूह के समूह हैं सो तुम उनमें कुबेर हो फिरो," परन्तु उस कृतज्ञी ने स्वामी का साथ नहीं छोड़ा।

अब राजा प्राह्लाद ने सब विद्याधरों को बुलाये और सब परिजनों को साथ ले वे आकाश-मार्ग से कुमार को ढूँढ़ने निकले;और उसे पृथ्वी पर, वनों में, तलवों के तट और पर्वतादियों में देखने लगे। राजा प्रतिसूर्य के पास एक दूत गया, जिसने पवनकुमार के कहीं चले जाने के हाल सुनाये।

अंजना यह हाल सुन बहुत दु:खित हुई और विलाप करने लगी-

"हाय नाथ ! मेरे प्राणों के आधार मुंझ जन्म दु:खियारी को छोड़ कहाँ गये ? क्या मुझ पर क्रोध न छोड़ोगे? एकबार ही अमृतवचन बोलो।

इतने दिन ये प्राण तुम्हारे दर्शन ही की वाँछा से रक्खे हैं। यदि तुम दर्शन न दोगे तो ये प्राण मेरे किस काम के ?"

उसे ऐसा विलाप करते देख, राजा प्रतिसूर्य ने उसे बहुत दिलासा दिया कि हम तेरे पति को अभी ही ढूँढ़ने जाते हैं। फिर वह बहुत से विद्याधरों को साथ ले मनसे भी अधिक शीघ्रगामी विमान में बैठ पवनकुमार को खोजने निकला; और राजा प्राह्लाद के साथ हो गया। वे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते भूतरवर नामा अटवी में आये। वहाँ वर्षाकाल के सघन

मेघ समान अंबरगोचर हाथी को देख विद्याधर प्रसन्न हुए और राजा प्रतिसूर्य को कहने लगे कि जहाँ यह हाथी है वहाँ पवनकुमार भी होना चाहिये, क्योंकि यह हाथी उस ही कुमार का है।

हाथी विद्याधरों के कटक का शब्द सुन क्षोभित हुआ और जब वे उसके समीप गये तो उसने स्वामी की रक्षार्थ उन्हें भगा दिया और पास नहीं आने दिया। तब विद्याधरों ने उसे हाथिनियों के समूह से वश किया, क्योंकि जितने वशीकरण के उपाय हैं उनमें स्त्री समान कोई उपाय नहीं है। राजा प्राह्लाद पवनकुमार के समीप गये और उसे कहने लगे-

"हे पुत्र ! तू महा विनयवान हो हमें छोड़ कहाँ आया? महा कोमल सेजपर शयन करने वाले तूने इस महा भीमवन में कैसे रात्रि व्यतीत की होगी?"

पवनकुमार काठ के पुतले की नाईं निश्चल रह किसी से न बोला। तब अंजना का मामा राजा प्रतिसूर्य पवनकुमार को छाती से लगा कहने लगा-

"हे कुमार ! मैं सर्व वृत्तांत जानता हूँ सो सुनो। संध्याभ्र नामा पर्वतपर अंनगवीचि नामा मुनि को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। सो मैं उनकी वन्दना कर वापिस आ रहा था कि मार्ग में पर्वत की एक गुफा से किसी स्त्री की रुदन सुनी। तब मैंने विमान से उतर गुफा में प्रवेश किया। वहाँ अंजना को देख मैंने वसंत माला से वनवास का कारण पूछा।

वसन्त माला ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। वहाँ अंजना को एक पुत्र हुआ, जिसकी कांति से गुफा प्रकाश रूप हो गई।

यह वार्ता सुन पवनकुमार हर्षित हो पूछने लगा-"वह बालक सुख से तो है?"

प्रतिसूर्य बोला-"बालक को मैं विमान में बैठा हनूसह द्वीपको ले जा रहा था कि वह माता की गोद में से उछला और पृथ्वीपर गिर पड़ा!" बालक का गिरना सुन पवनकुमार के मुख से आह! निकलने लगी।

प्रतिसूर्य ने कहा-"सोच मत करो। बालक को गिरा देख मैं नीचे उतरा तो क्या देखता हूँ कि पर्वत खण्ड-खण्ड हो गया और बालक एक शिलापर खेल रहा है! मैंने उसे उठा माता को दिया। इस समय अंजना पुत्र सहित हनूसह द्वीप में सुख से तिष्ठती है।"

यह वृत्तान्त सुन पवनकुमार को अंजना को देखने की अभिलाषा तत्काल उत्पन्न हुई। वे सब हनूसह द्वीप को गये। वहाँ प्रतिसूर्य ने सबको बहुत आदर से रक्खा और फिर वे सब विद्याधर प्रसन्न हो अपने-अपने स्थान को गये। बहुत दिनों में स्त्री का संयोग पा पवनकुमार वहीं रहने लगे। हनुमानजी ने बाल्यावस्था को उल्लंघ नवयौवन में बहुतसी विद्याएँ प्राप्त कीं। वे अनेक प्रकार के स्वर्ग के सुख अनुभव करते आनन्द से रहने लगे।

हनुमानजी का रावण की भानजी से विवाह

अथानंतर राजा वरुण ने फिर आज्ञा लोप की। तब रावण ने कोपायमान हो उस पर फिर चढ़ाई की और सब भूमि गोचरी विद्याधरों को बुलाया, सब सामन्तों के पास दूत भेजे और यह संदेशा कहलाया कि आपको अपनी सेना ले मेरे पास बहुत शीघ्र आना चाहिये।

हनूसह द्वीप में प्रतिसूर्य तथा पवनकुमार के पास भी दूत आया। दूत के वचन सुन उन्होंने अपनी सेनाएँ इकट्ठी कीं और रवाना होने को उद्यत हुए। चलते समय वे अपने हनुमानकुमार को राज्य सत्ता सौंपने लगे, कारण यह कि बुद्धिमानों की यह नीति है।

हनुमानजी उन्हें इस कार्य में उद्यत हुए देख कहने लगे-"हे पिताजी! आप यह क्या कहते हैं? इतना कहे यौवनशाली हनुमानजी स्वयं सेना सहित रावण के समीप जाने को तैयार हो गये। तब राजा पवनंजयने कहा-"बेटा! तुम्हें कुल परंपरा से प्राप्त होने वाले और शत्रुओं की बाधा रहित राज्य की रक्षा करना उचित है।"

कुमार ने अपना सिर झुका कर कहा-"पिताजी! मुझ पुत्र के होने पर भी आप किस प्रकार जा सकते हैं? कारण पुत्र का यही धर्म है कि अपने माता-पिता को सुखी रक्खे। अन्यथा शोक संताप के करने वाले बहुत से पुत्रों की उत्पत्ति से क्या लाभ है? पिता का एक ही भक्त सुपुत्र हो तो वही बस है।"

पवनकुमार-"बेटा! तू अभी सुकुमार है, तुझे युद्ध-कर्म का अभी अभ्यास नहीं है,"इसलिये तुझे शत्रु के सन्मुख जाना उचित नहीं है।

तब कुमार ने प्रत्युत्तर दिया-

"पिताजी! पृथ्वीतल पर पुरुष के शक्तिशालीपने की प्रशंसा

की जाती है। देखिये, गजराज कितना स्थूल होता है और सिंह कितना पतला होता है, परन्तु सिंह की गर्जना मात्र ही से सैकड़ों हाथी क्षणमात्र में भाग जाते हैं।''

अतएव यही कहना चाहिये कि शूरवीरता में सर्व कार्य सिद्ध होते हैं। इसमें अवस्था की कोई अपेक्षा नहीं है। आपके पुण्य प्रभाव से मैं क्षणमात्र में शत्रु का पराजय करूँगा।

पुत्र के वचन सुन पिता को संतोष हुआ और उसने अनेक शकुनों की प्रेरणा से अपने पुत्र को सेना के मध्य में भेजकर उसके चित्त को प्रफुल्लित किया।

कुमार हनुमान ने स्नानादिक क्रियाकर मांगलिक वस्तुओं से भगवान की पूजा की; और माता-पिता मामा की आज्ञा ले सामन्तों सहित लंका की ओर प्रस्थान किया। त्रिकुटाचल के सन्मुख विमान में बैठे जाते हुए हनुमान जी ऐसे शोभते थे मानों मन्दराचल के सन्मुख चन्द्र जाता हो।

वे महा उत्साह से नाना देश, द्वीप और पर्वतों को उलंघते और समुद्रतरंग शीतल स्थानों को अवलोकन करते हुए रावण के कटक में जा पहुँचे। हनुमानजी की सेवा देख बड़े-बड़े राक्षस विद्याधर विस्मित हो गये।

रावण उन्हें देख सिंहासन से उठा और उसने विनय से नम्रीभूत कुमार को उरसे लगाया और पास बैठाया। परस्पर कुशल प्रश्नांतर रावण कहने लगा-

''पवनकुमार ने हम से बहुत स्नेह बढ़ाया जो तुमसा गुणों का सागर पुत्र हमारे पास भेजा, तुमसा बली पा मेरे सब मनोरथ सिद्ध

होंगे। तुमसा रूपवान और तेजस्वी कोई नहीं है।'' रावण ने जब हनुमानजी के गुण- वर्णन किये तो उनका शरीर लज्जावन्त पुरुष की नाईं नम्रीभूत हो गया। सत्य है सन्तों की यही रीति है।

हनुमान जी विद्या से समुद्र को भेद वरुण के नगर में गये। रावण को कटक सहित आया जान वरुण योद्धाओं को ले पुत्रों सहित नगर के बाहर आया। वरुण के पुत्रों ने नाना प्रकार के अस्त्रों के समूह से आकाश को आच्छादित कर दिया, और रावण के कटक को ऐसा व्याकुल किया जैसे असुरकुमार देव क्षुद्र देवों को कंपायमान करता है।

अपने कटक को व्याकुल देख रावण वरुण के पुत्रों पर गया और जैसे कोई गजेन्द्र वृक्षों को उपाड़े तैसे ही उसने बड़े-बड़े योद्धाओं को उपाड़े।

एक तरफ रावण वरुण के सौ पुत्रों से लड़ने लगा और दूसरी तरफ कुम्भकर्ण और इंद्रजीत से वरुण लड़ने लगा। रावण का शरीर बाणों से भिद गया तौ भी उसने कुछ न गिना, हनुमान जी रावण को के सुला के रंग समान रक्तशरीर देख वरुण के पुत्रों पर दौड़े और उन्हें कम्पायमान किया। वे वरुण के कटक पर ऐसे पड़े, मानों कदली वन में मदोन्मत्त गजने प्रवेश किया हो। उन्हें अपने कटक में क्रीड़ा करता देख, वरुण उनपर धाया; परन्तु रावण ने नदी के प्रवाह को पर्वत समान रोक दिया। तब रावण और वरुण में घोर युद्ध होने लगा। उस ही समय हनुमानजी ने वरुण के सौ पुत्रों को बाँध लिए।

यह हाल सुन वरुण को विद्या का स्मरण न रहा, जिससे रावण ने उसे पकड़ लिया और कुम्भकर्ण को सौंप दिया। राजा को पकड़ा सुन वरुण की सेना भागी, कुम्भकर्ण ने कोपकर वरुण के नगर को

लूटने का विचार किया, तब रावण बोला-

"हे बालक ! तूने यह क्या दुराचार सोचा ? जो अपराध था, सो तो वरुण का था, प्रजा का क्या ? दुर्बल को दुःख देना दुर्गतिका कारण है और महा अन्याय है।"

ऐसा कह उसने कुम्भकर्ण को शांत किया और वरुण को, जिसका मुख नीचा हो गया था, बुलाकर कहने लगा-

"हे प्रवीण ! तुम शोक मत करो कि मैं युद्ध में पकड़ा गया। योद्धाओं की दो ही रीतियें हैं। मारे जायँ या पकड़े जायँ, रण से भागना तो कायर का काम है, इसलिए तुम हमारी क्षमा माँग अपने स्थान को जाओ और मित्र-बान्धवादि सहित सुख से राज्य करो।"

वरुण हाथ जोड़ रावण से कहने लगा-

"हे वीराधिवीर ! मेरा अपराध क्षमा करो, तुम इस लोक में महा पुण्याधिकारी हो, तुमसे जो वैर-भाव करे वह मूर्ख है। अहो स्वामिन्! मैं आपके विरुद्ध अब कभी न होऊँगा।"

तदुपरांत हनुमानजी ने वरुण के सौ पुत्रों को छोड़ दिया, तब वरुण हनुमानजी को कहने लगा-

"हे कुमार ! आप जैसी उत्तम क्षमा कहीं नहीं देखी। यदि आप मेरी सत्यवती नामा पुत्री को परणो, तो आप समान उदारचित्त पुरुषों से संबंध कर मैं कृतार्थ होऊँ!" इस तरह विनती कर वरुण ने अति उत्साह से हनुमानजी को अपनी पुत्री परणाई।

रावण अपनी राजधानी को लौट गया। वहाँ उसने हनुमानजी का बहुत सम्मान कर अपनी बहिन चंद्रनखाकी महारूपवती पुत्री 'अनंगसुमा' उनको परणाई; और बहुत संपदादिक दे कुण्डलपुर का

राज्य दिया, और अभिषेक कराया। उस नगर में हनुमानजी सुख से रहने लगे, मानो स्वर्गलोक में इंद्र ही हो। फिर किहंकूपुर के राजा नलकी पुत्री 'मालिनी' से, जिसने अपनी रूप संपदा से लक्ष्मी को जीत लिया था, विवाह किया। तथा किन्नर जाति के विद्याधरों की सौ पुत्रियाँ परणीं।

अथानंतर किहकंधपुरी के राजा सुग्रीव तथा रानी सुतारा पद्मावती अपनी पुत्री को नवयौवना देख, उन्हें उसके विवाह की चिंता लगी। माता-पिता को रात्रि-दिवस नींद नहीं आती और भोजन से अरुचि हो गई। रावण के पुत्र इंद्राजीतादि अनेक कुलवान् शीलवान् राजकुमारों के चित्रपट उसे सखियों द्वारा दिखाये, परन्तु उन सबको देख उसने दृष्टि संकोच ली।

जब उसने हनुमानकुमार का चित्रपट देखा, तो वह काम के पंचबाणों से भिद गई, तब उसे हनुमानजी में अनुरागिणी जान पुत्री का चित्रपट लिखवाया और हनुमानकुमार के पास भेजा। वह उस चित्रपट को देख ऐसा मोहित हुआ कि सहस्र विवाह होने पर भी किहकंधपुर गया। कुमार को आया सुन सुग्रीव अति हर्षित हुआ और सन्मुख आ कुमार को नगर में प्रवेश कराया। पद्मावती कुमार को झरोखे में से देख चकित हो गई।

जैसा वर तैसी कन्या, दोनों का अति हर्ष और बड़ी विभूति से विवाह हुआ। हनुमानजी प्रिया सहित अपने नगर में आये और पुत्र को महालक्ष्मीवान देख माता-पिता सुखरूप समुद्र में गोते खाने लगे।

सीताहरण

शंबूक रावण का भानजा और खरदूषण का पुत्र सूर्यहास खड्ग साधने के लिये दंडक वनमें गया। वहाँ वह ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर और एक ही अन्नका भोजन लेता हुआ बाँस के एक बीड़े में बैठा, जहाँ उसकी माता चंद्रनखा प्रतिदिन भोजन दे आती थी।

बारह वर्ष व्यतीत होने पर वह खड्ग प्रकट हुआ; और सात दिन में जो उसे न लें तो खड्ग और के हाथ में जाय और साधने वाले की मृत्यु हो।

माता उस खड्ग को देख अति प्रसन्न हुई और यह विचारती कि अब तीन दिन और हैं मेरा पुत्र वह खड्ग प्राप्त करेगो।

उस ही वन में रामचन्द्रजी, लक्ष्मण और सीता भी, पिताजी आज्ञानुसार राज्य छोड़ रहते थे। एक समय लक्ष्मण फिरता-फिरता उधर निकल आया, जहाँ शंबूक तप कर रहा था। लक्ष्मण उस ज्योतिर्मयी खड्ग को बाँस के एक वृक्ष पर देख विस्मित हुआ। उसने उस खड्ग को ग्रहण किया और परीक्षार्थ बाँस के उस ही बीड़े पर चलाया, जिससे वृक्षों के साथ शंबूक का भी सिर धड़ से अलग हो गया !

लक्ष्मण को यह मालूम नहीं हुआ और वह खड्ग ले अपने स्थान पर आ गया। जब दूसरे दिन चन्द्रनखा पुत्र के लिये भोजन ले वहाँ आई, तो पुत्र को मरा देख शोकाकुल हो गई और उसके कटे सर को गोद में ले उसे बार-बार-चूमा और महा कोप कर उसके शत्रु को ढूँढ़ने चली। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह वहाँ आई, जहाँ महा रूपवान रामचन्द्रजी और लक्ष्मण बैठे थे। उनके रूप को देख अपने प्रबल कोप को भूल गई। तत्काल वह उन पर ऐसी अनुरागिणी हो गई जैसे कोई हँसनी

कमल वन को या मृगी हरे धान्य के खेत को देखकर होवे। कितने ही हाव-भाव और प्रेमालाप से भी वह उनका मन चलायमान न कर सकी, तब निराश हो वह घर को गई और अपने वदन और वस्त्रों की दुर्दशा बनाकर अपने पति से विलाप कर कहने लगी-

मेरे पुत्र को, जिसके सूर्यहास खड्ग प्राप्त करने में केवल तीन ही दिन बाकी रहे थे, दुष्ट लक्षमण ने मार डाला है। मुझे वन में अकेली देख उस पापी ने अत्याचार करना चाहा, परन्तु मैं उसके हाथ से बड़े कष्ट से निकल यहाँ तक आई हूँ।

यह सुनकर खरदूषण क्रोध से ज्वलित हो लड़के का वैर लेने के लिये बड़ी भारी सेना ले दंडकवन में आया। रामचन्द्रजी भी लड़ने के लिये उद्यत हुए; परन्तु लक्ष्मण ने उन्हें न जाने दिया और कहा कि यदि मुझ पर भीड़ पड़ेगी तो मैं सिंहनाद करूँगा। वह खरदूषण से लड़ने के लिये गया।

जब शंबूक के मामा रावण ने भानजे की मृत्यु का हाल सुना तो वह भी पुष्पक विमान में बैठ लड़ने के लिये चला। मार्ग में उसकी दृष्टि राम-सहित सीता पर पड़ी। वह उस महासती को देख महा मोह को प्राप्त हुआ और अपने वहाँ आगमन का कारण भूल गया।

उसने अवलोकनी विद्या से मालूम कर लिया कि यदि मैं सिंहनाद करूँगा तो श्रीराम सीता को अकेली छोड़ लक्ष्मण की सहायता को जायेगा। उसने वैसा ही किया। जब श्रीराम लक्ष्मण के पास पहुँचे तो उसने विस्मित हो श्रीराम को सीता की रक्षार्थ वापिस भेज दिया।

इतने में सीता को अकेली देख रावण उसे विमान में बैठाकर ले गया। श्रीराम लौटने पर सीता को न देख हाहाकार कर विलाप करने लगे और जब लक्ष्मण खरदूषण को मार लौटे, तो सर्व हाल जान वह भी अत्यन्त शोक करने लगा।

सुग्रीव का श्री राम से मिलाप

अथ किहकंधपुर के राजा सुग्रीव की रानी सुतारा पर मोहित हो साहसगति नामा एक विद्याधर सुग्रीवका रूप बना उसको बहुत दुःख देने लगा। वह कृत्रिम सुग्रीव राजा बन बैठा और सत्य सुग्रीव दुःख का मारा नगर छोड़ बाहर फिरने लगा। उसने अनेक राजाओं की सहयता ली, परन्तु वह कृत्रिम सुग्रीव किसी से न हारा, तब उसने अपने दामाद हनुमानजी की सहायता ली, परन्तु हनुमानजी भी उसे न जीत सके।

अन्त में उसने श्री राम से निवेदन किया। श्री राम ने विचारा कि इसका और मेरा दुःख समान है। सो यदि मैं इस पर उपकार करूँ, तो यह मेरा मित्र होगा। फिर यदि यह मेरा उपकार न करेगा, तो मैं निर्ग्रंथ मुनि हो मोक्षका साधन करूँगा। ऐसा विचार वे सुग्रीव से कहने लगे-

"हे सुग्रीव ! जिस विद्याधर ने तेरा रूप बनाया है उसे जीत तेरा राज्य निष्कंटक कर तेरी स्त्री तुझे मिला दूँगा। और तेरा काम हुए पश्चात् तू सीता की खबर हमें ला देना कि वह कहाँ है।" तब सुग्रीव कहने लगा-"हे प्रभो ! मेरा कार्य हुए बाद यदि मैं सात दिन में सीता की सुध न लाऊँ तो अग्नि में प्रवेश करूँ ।"

तब श्री राम और लक्ष्मण ने किहकंधपुर जा कृत्रिम सुग्रीव को युद्ध के लिये एक दूत भेजा, वह सब सेना ले नगर के बाहर आया और दोनों सुग्रीवों में युद्ध होने लगा।

अन्त में कृत्रिम सुग्रीव ने सत्य सुग्रीव के सिर में एक गदा ऐसा मारा जिससे वह अचेत हो भूमि पर गिर पड़ा। वह उसे मृत समझ

नगर में लौट गया। जब वह सचेत हुआ तब वह कहने लगा-"हे रामचंद्रजी ! तुमने उसे नगर में क्यों जाने दिया?"

श्री राम बोले-"हम तुम दोनों को एक स्वरूप देख भेद ही भूल गये कि सत्य सुग्रीव कौन है?"

फिर श्री राम ने कृत्रिम सुग्रीव को और युद्धार्थ बुलवाया और सत्य सुग्रीव को छिपा रखा। तब श्री राम को देख उसकी बैताली विद्या भाग गई, जिससे उसका सत्य स्वरूप प्रकट हो गया। अब श्री राम और उसके बीच युद्ध होने लगा। अन्त में वह विद्याधर मारा गया, तब रामचंद्रजी ने उसे उसका राज्य सौंप सुखी किया।

सुग्रीव अपनी प्राणवल्लभा सुतारा को पा रामचन्द्रजी से अपनी प्रतिज्ञा भूल गया। श्री राम सोचने लगे कि कदाचन् मेरे विरह से तप्तायमान हो सीता परलोक को सिधारी होगी। इसलिये वह उसे न पा अथवा वह अपना राज्य पा निश्चित हो गया है, इसलिये हमारा दुःख भूल, सुग्रीव हमारे पास नहीं आता है।

ऐसा चिंतवन करते श्री राम के आँखों से आँसू ढल पड़े। तब लक्ष्मण रामचन्द्रजी को चिन्तित देख क्रोध से प्रज्वलित हो गया; और हाथ में खड्ग ले सुग्रीव के पास पहुँचा। वहाँ सुग्रीव की पत्नी सुताराने लक्ष्मण को क्रोधाविष्ट देख पति की प्राण भिक्षा माँगी।

सुग्रीव ने भी हाथ जोड़ लक्ष्मण से क्षमा माँगी उसके साथ श्री राम के पास आया। सुग्रीव ने श्री राम को नमस्कार की और अपने सब विद्याधर-सेवकों को बुला सीता की खबर लाने को दशों दिशाओं में भेजे और आप भी विमान में बैठ सीता की खोज में निकला।

वह विद्याधरों के सर्व नगरों में ढूँढ़ता हुआ महेन्द्र पर्वत पर आया। वहाँ रत्नजटी को देख पूछने-लगा-"हे रत्नजटी ! पहिले तू विद्या से संयुक्त था। अब हे भाई ! तेरी यह क्या दशा हो गई है?"

रत्नजटी कहने लगा-हे सुग्रीव ! दुष्ट रावण सीता को हर उसे विमान में बैठा ले जा रहा था, उस सीता को विलाप करते देख मुझ से ने रहा गया, तब उस रावण और मेरे में परस्पर विरोध हो गया, परन्तु वह महाबली कहाँ और मैं क्षुद्र शक्ति कहाँ ?

उसने मेरी विद्या छेद डाली, सो मैं विद्या रहित जीवित संशय बैठा था कि हे कपिवंशतिलक ! मेरे भाग्य से तुम आये हो। यह सुन सुग्रीव हर्षित हो उसे विमान में बैठा श्री राम के पास लाया।

रत्नजटी रामचंद्र और लक्ष्मण से मिला और हाथ जोड़ कहने लगा-

हे देव ! सीता महासती है, उसे दुष्ट दशानन हर ले गया है। उसे मृगी समान व्याकुल देख मैंने क्रोधकर रावण से कहा-

"हे रावण ! यह महासती मेरे स्वामी भामण्डल की बहिन है। तू इसे छोड़ दे।"

तब उसमें और मेरे में परस्पर विरोध हो गया, जिससे उसने मेरी विद्या छेद डाली। उस महा प्रबल को, जिसने युद्ध में इन्द्र को जीता, कैलाश को उठाया, जो तीन खण्ड का स्वामी है, जिसकी सागरांत पृथ्वी दासी है और जिसकी देवता भी सेवा करते हैं, मैं अल्पशक्ति कैसे जीतूँ ?

यह सकल वृत्तांत सुन श्री राम ने उसे उरसे लगा लिया और

बार-बार पूछने लगे-

"हे विद्याधर ! वह लंका कितनी दूर है?" वह विद्याधर निश्चल हो मुख नीचा कर कुछ न बोला।

श्री राम उसके मनका भाव जान कि इसके दिल में रावण का भय है, मन्द दृष्टि कर उसकी ओर निहारने लगे। तब वह यह समझा कि श्री राम मुझे कायर समझते हैं, हाथ जोड़ बोला-

हे देव ! जिसके नाम मात्र ही से हमें डर उत्पन्न होता है उसकी हम कैसे वार्ता करें ? कहाँ हम अल्प शक्तिके धनी और वह लंकाका ईश्वर?

इसलिये हे प्रभो ! तुम यह हठ छोड़ो, वस्तुको अब गई जानो अथवा सुनते हो तो सुनो। लवण समुद्र में राक्षस द्वीप प्रसिद्ध है। वह सातसौ योजन चौड़ा है और उसकी परिधि इक्कीस योजन है।

उसके मध्य सुमेरुतुल्य त्रिकुटाचल पर्वत है, वह नव योजन ऊँचा है और उसका विस्तार पचास योजन है; और वह नाना प्रकार के मणि और सुवर्ण से मंडित है। उस त्रिकूटाचल के शिखर पर लंका नगरी है, जिसमें विमान समान घर और अनेक क्रीड़ा-स्थान हैं।

उस नगरी में राजा रावण, भ्रात, पुत्र, मित्र बांधवादि सहित रहता है। उसके विभीषण और कुम्भकर्ण भाई हैं, जिनको देखने को आदमी तो क्या, देवताओं का भी सामर्थ्य नहीं है।

रावण का पुत्र इंद्रजीत पृथ्वी में प्रसिद्ध है, जिसके पूर्ण चंद्रमा समान छत्रको देख वैरियों का मान गल जाता है।

यह सुन लक्ष्मण बोला-"जो तुम रावण की इतनी प्रंशसा करते

हो सो सब वृथा है। यदि वह बलवान था, तो अपना नाम छुपा वह परस्त्री क्यों चुरा ले गया ? उस पाखंडी, अति कायर, अज्ञानी, पापी, नीच में रंचमात्र भी शूरता नहीं है।''

अथानंतर जांबूनंदादि सब रामचंद्रजी से कहने लगे-

हे देव ! एक समय रावण ने अनंतवीर्य योगींद्र से अपने मृत्यु का हाल पूछा था, तब उन मुनिराज की आज्ञा हुई कि, जो कोटिशिला को उठावेगा उसही से तेरी मृत्यु होगी। यह बात सुन लक्ष्मण बोला-

''मैं अभी ही वहाँ की यात्रा को चलूँगा।'' ऐसा कह वह चलने को उद्यत हुआ, और जांबूनंद, सुग्रीव, विराधित, अर्कमाली, नल, नील आदि संग हो लिये। वे शीघ्र ही निश्चित स्थान पर पहुँच गये; और लक्ष्मण ने सिद्धों का स्मरण कर शिला को गोड़े प्रमाण उठा लिया, तब आकाश में देव जय-जयकार करने लगे, और सुग्रीवादि आश्चर्यित हुए।

वहाँ से चल अनेक तीर्थों की यात्रा कर किहकंधपुर आये। प्रभात होने पर सब एकत्र हुए और रामचंद्रजी को नमस्कार कर पास बैठ गये।

श्री राम कहने लगे-''अब तुम ढील क्यों करते हो? मेरे विरह से जानकी लंका में बहुत दुःखी है, सो दीर्घ सोच छोड़ अभी ही लंका प्रतिगमन का उद्यत करो।''

तब राज्यनीति प्रवीण जांबूनंदादि बोले-

हे देव ! हमारी कोई ढील नहीं है, परन्तु यह निश्चय करना है कि सीताजी को लाने ही का प्रयोजन है या राक्षसों से युद्ध भी करना

है। यदि युद्ध करें, तो वह सामान्य युद्ध नहीं होगा। विजय पाना कठिन है और हे देव ! उसे युद्ध करने में जगत को महाक्लेश होता है, प्राणियों के समूह को विध्वंस होता है और समस्त क्रियाएँ जगत् से चली जाती हैं।

यदि विभीषण जो श्रावक के व्रतों का धारक है और पाप-कर्मों से रहित है, चातुर्यता से रावण को समझावे, तो कदाचित् वह अपयश के भय से लज्जित हो सीता को पठा देगा।

यदि विभीषण का कहना अवश्य मानेगा, क्योंकि उन दो भाइयों के अंतराय रहित परम प्रीति है और रावण विभीषण के वचन को कभी नहीं उल्लंघता है, इसलिये यह विचार कर रावण के पास कोई ऐसा पुरुष भेजना चाहिये, जो बात करने में प्रवीण, राजनीति में कुशल, अनेक नयों का ज्ञाता और रावण का प्रेम पात्र हो।

तब महोदधि नामा विद्याधर बोला-

"हे देव ! पवनंजय का पुत्र हनुमानकुमार, जो महाविद्यावान्, बलवान् और पराक्रमी है, उसे याचो, वह रावण का परम मित्र है। रावण को समझा वह सीता को पठा देगा और विघ्न टारेगा।"

यह बात सबने प्रमाण की और हनुमानजी के निकट श्रीभूतनामा दूतको भेजा।

हनुमानजी का श्री राम से मिलाप

अथानंतर श्रीभूतनामा दूत आकाशमार्ग से पवन के वेग से शीघ्र श्रीपुरनगर में आया और राजमंदिर की अपूर्व रचना देख चकित हो गया और सभा में जा सब हाल कहने लगा।

प्रथम हनुमानजी अपने ससुर खरदूषण की मृत्यु के हाल सुन बहुत क्रोधित हुए, तब दूतने कोप को निवारन के लिये मधुर स्वर से विनती की-

हे देव ! किहकंधपुर के राजा सुग्रीव को जो दुःख हुआ सो आप जानते ही हैं। कोई एक साहसगति नामा विद्याधर ने सुतारा पर मोहित हो सुग्रीव का रूप बनाकर उसे बहुत कष्ट दिया। जब कोई से कुछ भी न बन पड़ा, तब वह श्री राम के शरण गया। वे उसका दुःख निवारने को किहकंधपुर आये। प्रथम उन दोनों सुग्रीवों में युद्ध हुआ, परन्तु वह कृत्रिम सुग्रीव न हारा, तब श्री राम लड़ने को उद्यत हुए। उन्हें देख उसकी बैताली विद्या पलायन कर गई। अन्त में विद्याधर मारा गया, जिससे सुग्रीव का दुःख दूर हुआ।

यह हाल सुनकर हनुमानजी का क्रोध दूर हुआ और हर्षित हो वे कहने लगे-"अहो ! रामचन्द्रजी ने हमारा बड़ा उपकार किया; जो सुग्रीव का कुल अपयशरूप सागर में डूब रहा था उसे उद्धारा।"

इस प्रकार उनने श्री राम की बहुत प्रशंसा की और सुख-सागर में मग्न हो गये।

हनुमानजी बड़ी भारी सेना ले आकाश-मार्ग से किहकंधपुर को जाने को उद्यत हुए। उन्हें जाते सुन अनेक राजा संग हो लिये। जब

वे किहकंधपुर के समीप आये, तब कपिलवंशी हर्षित हुए और नगर की शोभा करा सन्मुख आये।

सुग्रीवने उनका बहुत सम्मान किया और रामचन्द्रजी का सकल वृत्तान्त कह सुनाया। तदुपरान्त वे श्री राम के निकट गये।

श्री राम को देख हनुमानजी को आश्चर्य हुआ और मन में कहने लगे कि मैंने इंद्र भी देखा है, परन्तु इनको देख मेरा हृदय परम आनन्द युक्त नम्रीभूत हो गया है।

श्री राम हनुमानजी को दूर ही से देख उठ खड़े हुए और उनसे मिले तब हनुमान जी उन्हें कहने लगे-

हे देव! शास्त्रों में लिखा है कि प्रशंसा परोक्ष में ही करना चाहिये, प्रत्यक्ष में नहीं; परन्तु आपके गुणों को देख मेरा मन वशीभूत हो आपकी प्रत्यक्ष स्तुति करता है। आपकी मैंने जैसी स्तुति सुनी थी, वैसी ही आज देखी। आप जीवों पर दयालु, महापराक्रमी, हित गुणों के समूह हो । हे नाथ! सीता के स्वयंवर में सहस्र देव रक्षित वज्रावर्त धनुष के चढ़ाने वाले आप धन्य हो।

तुम्हारी शक्ति धन्य, तुम्हारा रूप धन्य, सागरावर्त धनुष का धारक और सदा आज्ञाकारी आपका भ्राता धन्य ! आपने हमारा जैसा उपकार किया वैसा इन्द्र भी नहीं कर सकता है। अब हम आपकी क्या सेवा करें?

शास्त्र की आज्ञा है कि जो कृतघ्न पुरुष उपकार को भूल जाता है वह न्याय धर्म से बहिर्मुख पापियों से महापापी और अपराधियों में महा निर्दयी है, इसलिये हम अपना शरीर तजकर भी आपके काम

को उद्यमी है। मैं जाकर लंकापति को समझाऊँगा और तुम्हारी स्त्री तुम्हें पठवाय दूँगा।''

तब जांबूनंद मंत्री कहने लगा-''हे वत्स वायुपुत्र! हम सबको एक तुम्हीं आश्रय हो। लंकाको सावधानी से जाना और वहाँ किसी से विरोध न करना।''

जब हनुमान जी लंका को जाने को उद्यमी हुए, तब श्री राम उन्हें एकांत में बुला अति प्रीति से कहने लगे-

''हे कुमार ! सीता को ऐसा कहना कि हे महासती ! तुम्हारे वियोग से श्री राम का चित्त एक क्षण भी शांतरूप नहीं है और जब तक तुम परवश हो, तब तक हम अपना पुरुषार्थ नहीं जानते हैं। तुम महा निर्मल शील से पूर्ण हो और जो तुम हमारे वियोग से जो प्राण तजना चाहो तो वैसा न करना। अपने चित्त को समाधान रूप रखना। विवेकी पुरुषों को आर्त्त रौद्र से प्राण नहीं तजना चाहिये। मनुष्य देह दुर्लभ है; उसमें श्री जिनेन्द्रदेव का धर्म अति दुर्लभ है, और समाधिमरण तो और भी दुर्लभ है। यदि समाधिमरण नहीं होय, तो यह मनुष्य देह तुषवत् असार है और लो, यह मेरी मुद्रिका उसे विश्वासार्थ देना और उसका चूड़ामणि हमारे लिये ले आना।''

तब हनुमानजी ने उत्तर दिया-''जो आज्ञा करेंगे सो ही होगा'' ऐसा कह हनुमानजी बाहर आये और लक्ष्मण से मिल लंकापुरी के प्रति प्रस्थित हुए।

हनुमानजी का लङ्का प्रति गमन

अथानंतर आकाश-मार्ग से लंका प्रति जाते हनुमानजी ने मार्ग में राजा महेन्द्र का नगर देखा, मन में विचारा कि यह उस दुर्बुद्धि राजा का नगर है, जिसने मेरी माता को संताप उपजाया था। पिता होकर उसने अपनी पुत्री अंजना का ऐसा अपमान किया कि उसे नगर में भी न रहने दी। तब मेरी माता वन में गई, जहाँ अनंतगति मुनिराज ने उसका समाधान किया। सो मेरा वन में जन्म हुआ, जहाँ कोई बन्धु नहीं। मेरी माता शरणे आई और इसने न रक्खी, यह क्षत्रियका धर्म नहीं है, इसलिये मैं इसका गर्व अवश्य हरूँगा।

तब हनुमानजी ने क्रोधकर रण के बाजे बजवाये, जिनकी नाद सुन राजा महेन्द्र सर्व सेना सहित नगर के बाहर आया। दोनों सेनाओं में युद्ध होने लगा। राजा महेन्द्र रथ पर चढ़ धनुष चढ़ाय हनुमानजी पर धाया, तब उनने तीन ही बाणों में उसका धनुष छेद दिया और उसके दूसरा धनुष लेने के उद्यम के पहिले ही उसके रथ के घोड़े छुड़ा दिये। तब उसका पुत्र रथ में बैठ उन पर धाया, परन्तु उनने उसे ऐसा पकड़ा, जैसे गरुड़ सर्प को पकड़े। राजा महेन्द्र पुत्र को पकड़ा देख फिर उन पर चढ़ आया और शस्त्रों की वर्षा करने लगा।

हनुमानजी ने उल्का विद्या से उन शस्त्रों को विफल कर डाले और वे अपने रथ से उछल महेन्द्र के रथ में कूद पड़े और उसे पकड़ लिया। राजा महेन्द्र हनुमानजी को पहिचान और उनको महाबलवान परम उदयरूप से देख उनकी सौम्य वाणी से प्रशंसा करने लगा

"हे पुत्र! हमने जो तेरी महिमा सुनी थी सो आज प्रत्यक्ष देखी। हे पुत्र हनुमान ! तूने हमारे सब कुल उद्योग किये। निश्चय तू चरम

शरीरी है!''

अब हनुमानजी एक क्षण में और के और हो गये। वे हाथ जोड़ विनय सहित कहने लगे-

'हे नाथ ! मैंने बाल-बुद्धि से जो आपका अविनय किया है वह क्षमा करो।' फिर उनने श्रीराम का किहकंधपुर आना और अपना लंका प्रति जाने का सकल वृत्तांत कह सुनाया और कहा-

''जब तक मैं लंका होकर आता हूँ, तुम किहकंधपुर जा श्री राम की सेवा करो,'' ऐसा कह हनुमानजी आगे चले।

मार्ग में दधिमुखनामा द्वीप आया, जिसके एक वन में अग्नि प्रज्ज्वलित हो सर्वनाश कर रही थी। उसमें दो धीरवीर मुनि वृक्ष की नाई खड़े हुए थे और चार कोस की दूरी पर तीन कन्याएँ जटा धरे सफेद वस्त्र पहिने कोई विद्या विधि पूर्वक साध करती हुई दिखाई पड़ीं।

उन दो मुनियों को जलते देख हनुमानजी कम्पायमान हुए और वैयाव्रत करने को उद्यमी हुए। समुद्र से जल ला मूशलधार मेह बरसाया, जिससे क्षणभर में पृथ्वी जलमय हो गई। उपसर्ग मिटने पर वे उनकी पूजा करने लगे। उन तीन कन्याओं को भी विद्या सिद्ध हो गई। वे सुमेरु की तीन प्रदक्षिणाकर मुनियों के समीप आईं और वन्दना की, पश्चात् वे हनुमानजी की स्तुति करने लगीं-

''हे तात ! धन्य है तुम्हारी जिनेश्वरदेव में भक्ति! आप कहीं जा रहे थे, सो इन साधुओं पर उपसर्ग पड़ा देख उसे टारा। हमारे ही कारण वन में उपद्रव हुआ, परन्तु मुनि ध्यान से न डगे। हनुमानजी ने पूछा- '' हे कुमारियों ! तुम कौन हो और किस कारण वन में रहती हो ?''

तब उन सबमें से बड़ी बहिन बोली-

हे कुमार ! इस दधिमुख नामा नगर में राजा गंधर्व राज्य करता है। उसकी हम तीनों पुत्रियाँ हैं। विजयार्ध के सब विद्याधर राजकुमारों ने हमसे विवाहार्थ हमारे पिता से याचना कीं, उनमें अंगारक नामा एक विद्याधरकुमार अति दुष्ट कामाग्नि से प्रज्ज्वलित है। एक दिन हमारे पिताने एक अंष्टांग निमित वेत्ता मुनि से पूछा-

"हे भगवान् ! मेरी पुत्रियों का कौन वर होगा ?"

तब मुनि की आज्ञा हुई कि हे राजा ! जो रणभूमि में साहस गति को मारेगा, वही तेरी पुत्रियों को वरेगा। पिता उन वचनों पर दृढ़ हो हम किसी को नहीं देते हैं जिससे वह अंगारक वैर कों प्राप्त हुआ है। साहस गति के मारने वाले को जानने की अभिलाषा से हम यहाँ मनोगामिनी विद्या साधने आई थीं।

आज हमको देख अंगारक ने इस वन में अग्नि लगा दी। जो विद्या छः वर्ष और कुछ दिनों में सिद्ध होती है वह हमें उपसर्ग से न डरने के कारण बारह ही दिनों में सिद्ध हो गई है। हे महाभाग! जो तुम सहायता न करते, तो हमारा अग्नि से नाश होता और मुनि भी भस्म हो जाते।

वन के दाह शांत होने तथा मुनियों के उपसर्ग टलने के वृत्तान्त सुन, राजा गंधर्व हनुमानजी के पास आया। हनुमानजी से श्री राम का किहकंधपुर में विराजना सुन, वह अपनी पुत्रियों सहित वहाँ गया और उनको महाविभूति से श्री राम को परणाईं।

वहाँ से हनुमानजी त्रिकूटाचल की ओर चले। चलते-चलते उनकी सेना एकदम रुक गई और आगे न बढ़ सकी, तब हनुमानजी

ने अपने समीपवर्ती लोगों से पूछा कि मेरी सेना आगे क्यों नहीं चलती है ? क्या यहाँ कोई असुरों का नाथ चमरेन्द्र है अथवा इंद्र है ? इस पर्वत में कोई जिनमंदिर है अथवा कोई चरम शरीरी मुनि है ?

तब पृथुमति नामा मंत्री बोला-"दे देव ! देखिये, यहाँ कोई मायामयी यंत्र है। तब हनुमानजी ने वहाँ विरक्त स्त्री के हृदय समान एक दुष्प्रवेश किला देखा, जहाँ महाभयानक, सर्वभक्षी और अति तीक्ष्ण करवतों तथा जिह्वा के अग्रभाग से रुधिर उगलते हुए सर्पों से मंडित एक पुतली बैठी थी। विषरूप धूम्र का अंधकार छा रहा था। जो कोई मूर्ख सामंत होने के मान से उद्धत हो प्रवेश करता, तो उसे मायामयी सर्प ऐसे निगल जाते, जैसे कोई मेंढक हो। लंकाका कोट मंडल ज्योतिष चक्र से भी ऊँचा है और सर्व दिशाओं से दुर्लंघ्य है।"

वह यंत्र प्रलयकाल के मेघों के समान महाभयानक शब्दों से युक्त और अत्यन्तपाप कर्मियों से निर्माया है। यंत्र को देख हनुमानजी विचार ने लगे कि यह मायामयी कोट राक्षसों के नाथ ने रचा है, सो अब मैं विद्याबल से उसे तोड़ राक्षसों का मद ऐसे हरूँगा, जैसे कोई आत्मध्यानी मोह के मद को चूर करते हैं।

तब युद्ध का मन कर हनुमानजी ने सेना को आकाश में थाँभी; और आपने मायामयी बख्तर पहिन, हाथ में गदा ले, मायामयी पुतली के मुख में प्रवेश किया। उनने उस मायामयी पुतली की कुक्षि अपने तीक्ष्ण नखों से विदार डाली और गदा के घात से कोट को चूर्ण कर डाला।

उसको बिखरा देख कोट का अधिकारी वज्रमुख महा क्रोधायमान हो बिना विचारे हनुमानजी पर धाया, तब दोनों तरफ के योद्धा नाना

प्रकार के आयुध ले परस्पर लड़ने लगे, परन्तु हनुमानजी के सुभटों के आगे वज्रमुख के योद्धा दशों दिशाओं में भागे और हनुमानजी ने सूर्य से भी अधिक ज्योति वाले चक्रों से वज्रमुख का सिर पृथ्वी पर गिरा दिया।

युद्ध में पिता का मरण देख, उसकी पुत्री लंकासुन्दरी, क्रोध से रक्त नेत्र कर हनुमानजी पर धाई और कहने लगी-हे दुष्ट ! मैंने तुझे देखा। तू कहाँ बच कर जायेगा ? यदि तुझ में शक्ति है तो मुझ से लड़ाई कर।

हे पापी ! मैं तुझे अभी ही यमपुरी को पठा देती हूँ, ऐसा कह उसने हनुमानजी को ऐसा बेढ़ा, जैसे मेघ-पटल सूर्य को ढाँक दे। उनने विद्याबल से अस्त्रों को अपने पास तक न आने दिये। वह लंकासुन्दरी हनुमानजी को जीतने के बदले उनके कामबाणों से हार गई; और वह साक्षात् लक्ष्मी समान रूपवती हनुमानजी के भी हृदय में प्रवेश कर गई।

लंकासुन्दरी ने हनुमानजी पर चलाने के लिये जो शक्ति उठाई थी उसे नीचे डाल दी; और एक पत्र में यह समाचार लिखा, कि मैं जो देवताओं से भी नहीं हारी हूँ, तुम्हारे कामबाणों से हार गई हूँ। उसे बाण में लगा हनुमानजी पर चलाया। हनुमानजी उस पत्र को पढ़ अति प्रसन्न हो रथ से नीचे उतरे और उस सुन्दरी को मिले, मानो काम रति से मिलता हो। वह प्रशांत वैर हो पिता के मरण का शोक करने लगी। हनुमानजी कहने लगे-

"हे चन्द्रवदनी ! रुदन मत कर। तेरे पिता परम क्षत्रिय थे। शूरवीरों की तो यही रीति है कि स्वामी के कार्य के लिये युद्ध में प्राण

तक अर्पण कर दें और तुम शास्त्रों में प्रवीण हो, सो सब अच्छी तरह जानती हो, इसलिये तुम आर्त्तध्यान को छोड़ो। सब प्राणियों को अपने उपार्जे कर्म भोगने ही पड़ते हैं।"

तब वह शोक रहित हुई और हनुमानजी के साथ ऐसी शोभने लगी, जैसे पूर्ण चन्द्रमा से निशा शोभे। हनुमानजी ने स्तम्भनी विद्या से आकाश में एक मायामयी नगर बसाया और वहीं उनका लंकासुन्दरी से पाणिग्रहण हुआ।

जब प्रभात को हनुमानजी चलने को उद्यमी हुए, तब महाप्रेम से भरी लंकासुन्दरी कहने लगी-"हे कंत ! कोट के टूटने का हाल सुन रावण खेद-खिन्न हुआ होगा, सो तुम अब लंका क्यों जाते हो ?"

तब हनुमानजी ने सर्व वृत्तांत कह सुनाया। वह कहने लगी-"अब तुम्हारा और रावण का वह प्रेम नहीं रहा है। जैसे तैल के नहीं रहने से शिखा नहीं रहती है, वैसे ही स्नेह के टूटने से सम्बन्ध का व्यवहार नहीं रहता है। अब तक तुम्हारा यह व्यवहार था कि जब तुम लंका में आते थे, तो नगर में गली-गली आनन्द होता था और अब प्रचण्ड रावण तुमसे द्वेष रूप है सो वह निः सन्देह तुमको पकड़ेगा, इसलिये जब तुम्हारी उनकी संधि हो जाय, तब उससे मिलना।"

हनुमानजी कहने लगे-"हे विचक्षणे ! मुझे उससे लड़ाई नहीं करना है। मुझे तो केवल उसका अभिप्राय जानना है। और मैं उस सीता सती का दर्शन करना चाहता हूँ, जिसको देख रावण का भी सुमेरु समान अचल मन चलायमान हो गया है।" ऐसा कह उनने सेना को लंकासुन्दरी के समीप रखी और आप लंका में गये।

हनुमानजी ने थोड़े ही सेवकों को ले निशंकता से लंकापुरी में

प्रवेश किया। प्रथम ही वे विभीषण के मंदिर में गये, वहाँ विभीषण ने उनका बहुत सम्मान किया। फिर क्षणेक बैठ वार्तालाप कर हनुमानजी बोले-

"जो रावण अर्द्ध भरत क्षेत्र का स्वामी है उसे यह उचित न था कि दरिद्र मनुष्य की नाईं पर स्त्री चोरी कर लावे। जो राजा है वे सर्व मर्यादा के मूल हैं। यदि राजा अनाचारी हो, तो सर्वलोक में अन्याय की प्रवृत्ति होती है। ऐसा चारित्र करने से सर्वलोक में निंदा होती है, इसलिये तुम रावण को कहना कि वह न्याय को न उल्लंघे।"

तब विभीषण बोला-"मैंने भाई को बहुत बार समझाया है, परन्तु वह मानता नहीं है और आठ दिन से वह मुझ से बोलता भी नहीं है, तथापि तुम्हारे वचन से मैं उसे फिर दबाकर कहूँगा; परन्तु यह हठ उससे छूटना कठिन हैं आज ग्यारहवाँ दिन है। सीता निराहार है और जल भी नहीं ग्रहण किया, तिस पर भी रावण को दया नहीं उपजी है।" यह सुन हनुमानजी का हृदय दया से आर्द्र हो गया और वे प्रमथ नामा वन को जहाँ सीता थी, जाने को उद्यमी हुए।

हनुमानजी का सीता से मिलाप

महासती सीता को दूर ही से देख हनुमानजी मन में कहने लगे- धन्य है इस माता का रूप ! जिसने इस लोक में सर्वलोक जीते हैं, मानों यह कमल से निकली हुई लक्ष्मी ही विराज रही है। दुःख-समुद्र में डूबी हुई है, तो भी इस समान कोई नहीं है। जैसे बने तैसे मैं इसे श्री राम से मिलाऊँगा। उनके लिये तो मैं अपना तन भी दे दूँगा; परन्तु इसका वियोग न देखूँगा। ऐसा सोच हनुमानजी ने अपना रूप बदला और मंद- मंद पैर धर, आगे जा श्रीराम की मुद्रिका छुप के सीता के समीप डाली।

मुद्रिका को देख सीता को रोमांच हो आया और मुख भी कुछ हर्षित हुआ। सीता को हर्षित देख उसकी प्रसन्नता के हाल रावण से कहे। रावण ने कार्य सिद्धि जान मंदोदरी आदि को उसके पास भेजा।

मंदोदरी सीता के समीप जा कहने लगी-"हे बालिके ! आज तूने प्रसन्न हो हम पर बड़ी कृपा की। अब लोक के स्वामी रावण को परण।"

यह सुन सीता कोपकर कहने लगी-"हे खेचरी! आज मेरे पति की वार्ता आई है। मेरे पति आनंद से हैं, इसलिये मुझे हर्ष हुआ है।" मंदोदरी ने सोचा कि आज ग्यारह दिन हुए इसने अन्न-जल नहीं लिया है सो कदाचित् यह वायु से ऐसी बकती है। तब सीता मुद्रिका लाने वाले को कहने लगी-

"हे भाई ! मैं यहाँ भयानक वन में पड़ी हूँ, सो जो उत्तम जीव मेरे भाई समान स्नेह रखने वाला यह मुद्रिका लाया है, वह प्रकट

दर्शन देवे।''

तब हनुमानजी प्रकट हुए और उनने हाथ जोड़ शीश नमाय नमस्कार की। प्रथम अपना कुल, गोत्र माता-पिता का नाम बताये, उनने अपना नाम सुनाया; और फिर श्री राम ने जो कहा था सो सब कह सुनाया।

हे साधर्मिनी ! श्री राम स्वर्ग विमानतुल्य महल में विराजते हैं, परन्तु तुम्हारे विरह रूप समुद्र में वे कहीं भी रति नहीं पाते हैं। समस्त भोगोप भोग तज वे मौन धर, तुम्हारा ही ध्यान करते हैं। वे वीणा का नाद और सुन्दर स्त्रियों का गीत नहीं सुनते हैं। वे सदा तुम्हारी ही कथा करते हैं और केवल तुम्हारे ही दर्शन के लिए प्राण को रखे हैं।

राणी मंदोदरी हनुमानजी को राम का पक्ष ले उनके समाचार लेकर आये हुए देख आश्चर्यित हुई और उनको कहने लगी-''यह बड़ा आश्चर्य है कि जिस हनुमानजी को लंकाका धनी रावण भाइयों से अधिक गिनता है, वे भूमिगोचरियों के दूत बनकर आये हैं।''

हनुमानजी ने उत्तर दिया- ''हे राजा मय की पुत्री और रावण की पट्टराणी ! मुझे भी बहुत आश्चर्य है कि जिस पति के प्रसाद से तू देवों के सुख भोग रही है, उसे अकार्य में प्रवृत्त देख तू मना नहीं करती है मगर उसके दुष्ट कार्य में अनुमोदन करती है। तू अपने पति को विष-भर भोजन करने से क्यों नहीं रोकती है?''

जो अपना भला-बुरा नहीं जानता है उसका जीना पशु-समान है और कहाँ तो तेरा सबसे अधिक सौभाग्य और कहाँ यह तेरा परस्त्रीरत

पति का दूतीपना ? तुम तो सब बातों में प्रवीण और बुद्धिमती थीं और अब प्राकृत जीवों के समान अविधि कार्य करती हो ? तुम अर्द्धचक्री की महिषी कहिये पट्टराणी हो, सो अब मैं तुमको महिषी कहिये भैंस समान जानता हूँ।''

मंदोदरी आदि हनुमानजी के ऐसे न्याय-युक्त वचन सुन कुछ न बोल सकी। मान भंग हो वे रावण के पास गई और सब हाल कह सुनाया। तदुपरांत हनुमानजी ने हाथ जोड़ नमस्कार कर सीता को आहार के लिए निवेदन किया। सीता को यह प्रतिज्ञा थी कि जब तक पति के कुशल समाचार न सुनूँ, तब तक भोजन न करूँगी। सो अब पति के सुख समाचार सुन उसने भोजन करना अंगीकार किया। तब हनुमानजी एक कुल पालिका को भोजन की सामग्री लाने की आज्ञा देकर आप विभीषण के यहाँ गये और वहीं भोजन किया।

जब सीता भोजन कर कुछ विश्राम को प्राप्त हुई, तब हनुमानजी ने हाथ जोड़ विनती की-

हे पतिव्रते ! हे गुण भूषणे ! मेरे कंधे चढ़ो । मैं तुम्हें क्षण-मात्र में समुद्र लांघकर श्री राम के पास ले जाऊँगा। तब सीता रुदन कर कहने लगी-

''हे भाई ! पति की आज्ञा बिना मेरा गमन करना योग्य नहीं है। यदि वे पूछें कि बिना बुलाये क्यों आई, तब मैं क्या उत्तर दूँगी? रावण ने तुम्हारा उपद्रव तो सुना ही होगा। तुम्हारा यहाँ विलम्ब करना योग्य नहीं है, सो अब तुम जाओ और लो, यह मेरा क्षत्र चूड़ामणि उन्हें विश्वासार्थ दे कहना कि मैं जानती हूँ कि आपकी मुझ पर बहुत

कृपा है तथापि अपने प्राण यत्न से रखना, तुमसे मेरा वियोग हुआ है, सो अब तुम्हारे ही यत्न से मिलाप भी होगा।''

अथानंतर रावण ने, हनुमानजी का मायामयी यंत्र तोड़, लंका में प्रवेश करना सुन क्रोधरूप हो, महा निर्दयी किंकरों को यह आज्ञा दे पठाया कि-मेरे पुष्पक नामा क्रीड़ोद्यान में कोई द्रोही विद्याधर आया है सो उसे पकड़कर मेरे पास लाओ। तब उन ने जाकर-वन रक्षकों से कहा कि तुम प्रमाद रूप क्यों हो रहे हो ? कोई एक दुष्ट विद्याधर यहाँ प्रमथ वन में आया है सो उसे महाराज ने पकड़ बुलाया है। तब वन के सब रक्षक योद्धाओं को ले हनुमानजी को पकड़ने चले।

अनेक लोगों को शस्त्र सहित आते देख, सिंह से भी अधिक पराक्रमी हनुमानजी ने अपने मुकुटस्थ रत्न जड़ित वानर चिह्न से प्रकाश किया। उस प्रकाश को देख वे सब पलायन कर गये, तब अधिक बलवान योद्धा शक्ति, तोमर, खड्ग, चक्र, गदा, धनुष आदि अस्त्रों से सज्ज होकर आये; और हनुमानजी पर आयुधों की वर्षा करने लगे। यह देख अस्त्ररहित अंजनी पुत्र ने बड़े-बड़े वृक्षों के समूह और पर्वतों की शिलाएँ उखाड़ीं और रावण के सुभटों पर चलाईं, जिससे अनेक योद्धा मारे गये। उनमें कई एक मुक्कों और लातों से मारे, कई एक पीस डाले और कई एक भाग गये। इस तरह उनने समुद्र समान रावण की सेना बिखेर डाली। उस वन के भवन, वापिका और विमान तुल्य उत्तम मंदिर आदि सब ही चूर डाले। हाटों की पंक्तियाँ फोड़ डालीं और अपनी जंघाओं से अनेक वर्ण रत्नों के महल ढा डाले, सो अनेक वर्णों के रत्नों के रज से ऐसा मालूम पड़ता था, मानो आकाश में

हजारों इंद्रधनुष चढ़े हों।

तब मेघनाद और इंद्रजीत बख्तर पहन बड़ी भारी सेना ले हनुमानजी को पकड़ने आये। हनुमानजी चार घोड़ों के रथ पर आरूढ़ हो धनुष-बाण ले राक्षसों की सेना पर धाये। दोनों सेनाओं में परस्पर घोर युद्ध होने लगा। हाथियों से हाथी, रथों से रथ, घोड़ों से घोड़े और पियादों से पियादे लड़ने लगे। कई एक मारे गये और कई एक पुकार करने लगे।

हर एक सुभट अपनी-अपनी पूर्ण शक्ति दिखाने लगा और जो कायर थे वे तो भाग ही गये। कई एक तो सिर कट जाने से धड़ ले फिरने लगे। गृद्ध पक्षी आसमान में उड़ने लगे और रणभूमि स्मशान-सी ही भासने लगी।

जब बहुत देर तक युद्ध होता रहा और हनुमानजी न पकड़े गये, तब इन्द्रजीत ने सोचा कि यह पवनसुत अवश्य चरम शरीरी है, इसे नागफाँसही से फादना चाहिये, ऐसा सोच उसने नागफाँस छोड़ी। उसने छूटते ही हनुमानजी को गाढ़ा बाँध लिया।

जब इंद्रजीत हनुमानजी को बाँध बाजार में से ले चला, तब लोग उन्हें देख अनेक प्रकार की बातें करने लगे-देखो, यह वह अंजनी पुत्र है, जिसने बालपन में विमान से गिर पहाड़ को चूरा कर डाला था, जिसने वरुण के सौ पुत्रों को रण में बाँध लिया था, और जिसने अजेय लंकासुन्दरी को जीत लिया था; वही आज बंधन में फँसा है।

दूसरा कहने लगा कि इंद्रजीत ने इसे प्रपंच से बाँध लिया है। इस समान तो कोई धीर सुभट ही नहीं है। वह वीरों में महाबलवीर

है। तो तीसरा बोला कि यह सब कहना झूँठ है। जो उत्पन्न हुआ है वह अवश्य ही विनाश को प्राप्त होगा। ये सब कर्म के फेरे हैं। कभी तो मनुष्य सुखलीला करता है और कभी भीख माँगता फिरता है। जब तक वे इस प्रकार बातें कर रहे थे, उतने में इंद्रजीत ने हनुमानजी को ले जा रावण के सन्मुख खड़ा कर दिया, और कहा-"हे पिताजी ! लीजिये, यह हनुकुमार है। अब आप जो योग्य समझें, वह देह दंड इसे दीजिये।"

तब दशमुख हनुमानजी से कहने लगा-

"हे वानरपति ! मैंने तुझे भाई समान गिन कुण्डलपुर का राज्य दिया और तूने स्वामी द्रोह का कार्य किया, इसलिये अब तेरी मृत्यु निकट आई है, तुझसा कोई मूर्ख न होगा, जो सुवर्ण को छोड़ पत्थर को ले और हस्ती को छोड़ गधे पर बैठे। देख, कहाँ तूने हम खेचरों के पक्ष को छोड़ भूचर रघुवंशियों का पक्ष ग्रहण किया है?"

हनुमानजी हँसकर बोले-"हे लंकापति ! मेरी बात ध्यान दे सुनो, उदय वाहन तुम्हारे नाना थे, जिनकी इंद्रादिक देव पूजा करते थे, उनके वंश में बहुत से नरेन्द्र हुए हैं, जो कर्म फंदको काट-मुक्ति को गये। श्रीमाली तुम्हार दादा थे, जो जिनव्रत धर शुभ स्थान को गये, रत्नश्रवा तुम्हारे पिता थे, जो निर्दोष तपकर शिवपुर गये, उनके उज्ज्वल वंश में तुमने जन्म ले उसे धूसर कर डाला है। अब तुम्हारी मृत्यु निकट आई है, जो सोते हुए सिंह, राम को जगाया। यदि तुम्हें जीवन की इच्छा हो तो सीता को राम के पास भेज दो।"

तुमने वेद-शास्त्र में सुना ही है कि तुम्हारी मृत्यु लक्ष्मण के

हाथ होगी। जब से तुमने पर स्त्री को हरा है, तबसे हमने तुम्हारी आशा छोड़ दी है, क्योंकि जो कुमित्र से मित्रता, कुआँरी कन्या से यारी और दुष्ट भूपति की सेवा करता है उसका पुण्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और इस ही भव मोक्षगामी हैं, फिर हम उनकी आशा क्यों छोड़े ?

रावण मान सह बोला-

"रे वानर ! राम और लक्ष्मण कौन रंक हैं, जिन्हें पिता ने घर से निकाल दिया है और वे अब भीलों की नाईं फल-फूल खा वनों में रहते हैं। अरे ! तूने अभी मेरा पौरुष नहीं सुना है। मेरा कुम्भकर्ण भाई है और इन्द्रजीत और मेघकुमार पुत्र हैं, जिनके पौरुष का पार नहीं और जिनकी भूचर, खेचर सब ही सेवा करते हैं। नव ही ऋद्धियाँ मेरे भंडार में हैं। सेना का पार नहीं है। लंका द्वीप के चहुँ ओर अति उतंग कोट हैं, जो समुद्र से घिरा होने के कारण शत्रु से दुष्प्रवेश है। मेरे पास और जो वस्तुएँ हैं उनका पार नहीं है। ऐसी-ऐसी राजसत्ता को पा मैं इस लंकापुरी में इंद्रसमान ही राज्य करता हूँ।"

हनुमानजी-"हे भूपति ! यह संसार इंद्रधनुष समान असार है। रथ, हस्ती, अश्व, पालकी आदि मेघ की घटा समान क्षण में बिखर जाते हैं और यह आयु अंजलि के जल ज्यों क्षणिक ही है। माता-पिता, मित्र, कलत्र आदि सब अपना ही स्वार्थ साधते हैं और कोई सहाय नहीं होता है। इस पृथ्वी पर अनेक चक्रवर्ती राजा हुए हैं, परन्तु वे सब काल से नहीं बचे हैं।

हे भूपाल ! जिस समय दुर्भिक्ष-काल आ पड़ता है उस समय

इस जीव को कोई शरण नहीं होता। यह जीव इस संसार में अनन्तकाल से भ्रमण कर रहा है, तो भी उसका पार नहीं आया। जिस समय जीव इस चर्म, हड्डी, रुधिर, मज्जा, मांस आदि पदार्थों से भरे हुये शरीर को छोड़ अलग होता है, उस समय केवल पुण्य और पाप ही उसके साथ जाते हैं। इसलिये हे राजन् ! यह निंद्य कार्य न कर और सीता को श्री राम को सौंप दे।

परस्त्री-सेवने की दुर्बुद्धि से तेरा नाश होगा। जैसे नाना प्रकार के भोजन करने पर भी कोई तृप्त नहीं हो, विष की एक ही बूँद मात्र से नाश को प्राप्त होता है, वैसे ही तू भी हजारों स्त्रियों से तृप्त न हो, परस्त्री की तृष्णा से नाश को प्राप्त होगा।

हे रावण ! इसलिये सीता को श्री राम को सौंप दे, अन्यथा तेरे ही कारण राक्षस वंशियों का नाश होगा।''

ये वचन सुन रावण क्रोध से आरक्त हो कहने लगा-

''यह पापी मृत्यु से नहीं डरता है। इसे ले जाओ और दुर्दशा कर नगर में फिराओं।'' जब किंकर उन्हें बाँध बाहर निकले तो हनुमानजी बंधन तुड़ाय आकाश में उड़ गये, मानों कोई यति मोहफन्द को तोड़ मोक्षपुरी को जाता हो।

श्री राम की लङ्का पर चढ़ाई

अथानंतर हनुमानजी अपना कटक ले किहकंधपुर आये, उन्हें लंका से लौट आये सुन नगर के लोग सन्मुख आये और सबने बड़े उत्साह से नगर में प्रवेश कराया। हनुमानजी उस ही वक्त श्री राम से मिले और हाथ जोड़ नमस्कार कर हर्षित वदन से सीता की वार्ता और रहस्य के सब वृत्तांत कहे और सीता का चूड़ामणि सौंपा।

श्री राम पूछने लगे-"हे हनुकुमार ! सत्य कहो क्या सीता जीवती है ?" हनुमानजी बोले-हे नाथ ! वह जीवती है और उसे आपका ही ध्यान है। वे पृथ्वीपते ! आप सुखी होओ। आपके विरह से वह सत्यवती निरन्तर रुदन करती है और उसने नेत्रजल से चातुर्मास कर रक्खा है। गुण के समुद्र की नदी सीता के केश बिखर रहे हैं। बारम्बार निश्वास डालती है और दु:ख-समुद्र में डूबी हुई है।

उसका पहिले ही से दुर्बल शरीर था और अब अधिक दुर्बल हो गया है। रावण की स्त्री उसे आराधती हैं, परन्तु वह किसी से संभाषण न कर, निरंतर आप ही का ध्यान करती है। उसने शरीर के सब संस्कार तज दिये हैं।

"हे देव ! तुम्हारी रानी ने बहुत कष्ट से प्राण रक्खे हैं। अब आपको जो करना हो सो करो।"

हनुमानजी के ये वचन सुन, श्री राम चिंतावान हुए, मुख-कमल कुम्हला गया, दीर्घ निश्वास डालने लगे और अपने जीतव्य को अनेक प्रकार निंदने लगे। तब लक्ष्मण ने उन्हें धीर बंधाया और गमन का उद्यम किया।

भामंडल को दूत भेज युद्ध के लिये बुलाया। बड़े-बड़े योद्धा विद्याधर, धनगति, एकभूत, गजस्वन, कूरके लि, किल भीम, कुण्ड, गोरीव, अंगद, नल, नील, तड़ित्, वक्र, मंदर, अर्शनी, अर्णव, चन्द्रज्योति, मृगेन्द्र, वज्रदृष्टि आदि और उल्का विद्या, लांगूल विद्या और दिव्य अस्त्रों में प्रवीण हनुमानजी और सुग्रीवादि संग हो लिये।

श्री राम और लक्ष्मण ने उन विद्याधरों को संग ले मार्गशीर्ष वदी पंचमी के दिन सूर्योदय के समय गमन किया। प्रयाण के समय अच्छे-अच्छे शकुन हुए, निर्धूम अग्नि की ज्वाला, मनोहर शब्द करते हुए मयूर, वस्त्राभरण संयुक्त नारियाँ, सुगन्ध पवन, निर्ग्रंथ मुनि, छत्र, तुरंगों का हींसना, घण्टे की आवाज और दही का भरा कलश आदि दीखे।

राम का कटक समीप आया जान लंका क्षोभित हुई और रावण कोप रूप हो संग्राम के लिये उद्यम करने लगा, तब शास्त्र प्रवीण विभीषण रावण के पास जा उसे समझाने लगा-

"हे प्रभो ! तुम्हारी कीर्ति कुन्द के पुष्प के समान उज्ज्वल है, और सारी पृथ्वी में फैल रही है। वह कीर्ति परस्त्री के निमित्त क्षणमात्र में नष्ट हो जायेगी, इसलिये हे नाथ ! हम पर प्रसन्न हो सीता को राम के पास पठाओ।"

रावण को यह मंत्र विष समान लगा। तब विभीषण छः लाख छप्पन हजार एक सौ हाथी,उतने ही रथ, उन्नीस लाख अड़सठ हजार तीन सौ तुरंग, बत्तीस लाख अस्सी हजार पाँचसौ प्यादे और अनेक सामंतों सहित राम के पास जा कहने लगा-"हे देव! हे प्रभो !! निश्चय से मेरे इस जन्म में तुम ही प्रभु हो" ऐसा कह वह उनसे मिल गया।

समुद्र समान रावण की सेना को देख, नल, नील, जामवंत, हनुमानजी आदि विद्याधर रणक्षेत्र में निकले। दोनों ओर के बाजों की उच्च ध्वनि से, रथों के चीत्कार शब्दों से, घोड़ों के हिनहिना से, हाथियों की गर्जना से और धनुष्यों के टंकार के शब्दों से वहाँ कानों से कुछ भी सुनाई नहीं पड़ने लगा।

ऐसे महाविकराल युद्ध के भयंकर शब्दों को सुनकर कायर पुरुषों के हाथ से युद्ध के शस्त्र गिरने लगे, और शूरवीरों के शरीर में हर्ष के रोमांच उठने लगे। दोनों सेनाओं में परस्पर घोर युद्ध होने लगा। राक्षसों ने हनुमानजी पर खंग, कुन्त, बाण, तीर, चक्र, भाला, तलवार आदि अनेक शस्त्र चलाए, परन्तु वे चलायमान न हुए और वानरवंशियों ने रावण की सेना सब दिशाओं में विध्वंस की।

लक्ष्मण ने इंद्रजीत और मेघवाहन पर आशीबिष जाति का नागबाण चलाया, जिससे वे अचेत हो भूमि पर गिर पड़े।

श्री राम ने कुम्भकर्ण को रथ रहित किया। फिर उसने श्री राम पर सूर्यबाण चलाया, जिसको उनने निबार, उसे नागबाण से बेढ़ा। सो कुम्भकर्ण भी नागबाण से बेढ़ा हुआ पृथ्वी पर पड़ा। लक्ष्मण ने इन्द्रजीत और मेघवाहन को विराधित को और श्री राम ने कुम्भकर्ण को भामण्डल के हवाले किया।

रावण ने विभीषण पर त्रिशूल चलाया, परन्तु लक्ष्मण ने उसे बीच ही में अपने बाण से भस्म कर विभीषण तक न आने दिया।

रावण ने महा क्रोधायमान हो नागेन्द्र की दी हुई महा दारुण शक्ति ली। लक्ष्मण विभीषण को पीछे कर, आप रावण पर धाये। तब रावण ने लक्ष्मण पर शक्ति चलाई, सो लक्ष्मण शक्ति के प्रहार

से पराधीन देह हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसे देख श्री राम शोक को दबा शत्रु को घात के निमित्त उद्यमी हुए। उनने रावण के कई धनुष और रथ तोड़ डाले, परन्तु वह मारा नहीं गया। तब वे आश्चर्यित हो कहने लगे-

"हे रावण ! तू अल्पायु नहीं है। अभी तेरी आयु के कई एक दिन बाकी हैं। हे लंकापते ! मेरा भाई तेरी शक्ति से मारा गया है सो उसकी मृत्यु क्रिया कर मैं तुझ से प्रभात ही युद्ध करूँगा।"

तब रावण युद्ध को बन्द कर लंका में गया और वहाँ इन्द्रजीत, मेघवाहन और कुम्भकर्ण के पकड़े जाने के हाल सुन बहुत खिन्न हुआ।

श्री राम लक्ष्मण के शोक से व्याकुल हुए, और भाई को चेष्टा रहित देख, मूर्च्छित हो गिर पड़े। बहुत देर में जब सचेत हुए, तो दुःख रूपी अग्नि से प्रज्ज्वलित हो अत्यन्त विलाप करने लगे-

"हे वत्स ! कर्म के योग से तेरी यह क्या दारुण दशा हुई है? तू दुर्लंघ्य समुद्र को तर यहाँ आया, तू मेरी भक्ति में सदा सावधान और मेरे कार्य के लिए सदा उद्यमी रहता था। हे भाई ! मुझ से शीघ्र ही वार्तालाप करो; मौन क्यों धारण की है ? तू नहीं जानता कि तेरे वियोग से मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता हूँ। अधिक दुःख न दे।

अब उठ और मेरे उरसे लग। तेरा विनय कहाँ गया ? तुझे माता-पिता ने मुझे धरोहर सौंपा था सो अब मैं क्या जवाब दूँगा ? तेरे समान जग में हितु नहीं है। तू सुभटों में रत्न हैं। तेरे बिना मैं कैसे जीऊँ? तेरे बिना मैं अपना जीतव्य विफल मानता हूँ। हाय ! पापों के उदय का चरित्र आज मैंने प्रत्यक्ष देखा। जिस सीता के निमित्त मैं तुझे निर्दयी

शक्ति से पृथ्वी पर पड़ा देखता हूँ अब उस सीता से क्या ? काम, अर्थ, और-और सम्बन्धी पृथ्वी में जहाँ-तहाँ मिलते हैं, परन्तु माता, पिता और भाई नहीं मिलते।

हे सुग्रीव ! तुमने अपनी मित्रता बहुत दिखायी, अब तुम अपने स्थान को जाओ। हे भामण्डल ! तुम भी जाओ। अब मैंने सीता की आशा तजी और जीने की आशा तजी। मैं निसंदेह भाई के साथ अग्नि में प्रवेश करूँगा।

हे विभीषण ! मुझे सीता का भी सोच नहीं है और भाई का भी सोच नहीं है, परन्तु हम से तुम्हारा कुछ भी उपकार न बना, इस बात का मुझे बहुत खेद है। भो भामण्डल ! भो सुग्रीव ! भाई के लिये चिता रचो। मैं उसके साथ अग्नि में प्रवेश करूँगा।''

जिस समय श्री राम इस प्रकार विलाप कर रहे थे उस समय भामंडल ने एक सुन्दर मूर्ति विद्याधर को कटक में प्रवेश करते देख उसे पूछा-''कौन, और कहाँ जाता है ?''

तब वह बोला-''मुझे बहुत दिनों से श्री राम के दर्शन की अभिलाषा है, सो मैं उनके दर्शन करूँगा और जो तुम लक्ष्मण की जीवने की वांछा करते हो, सो मैं उनके जीवने का उपाय करूँगा।''

भामंडल अति प्रसन्न हो उसे श्री राम के समीप ले गया।

वह विद्याधर श्री राम को नमस्कार कर कहने लगा-''हे देव ! तुम खेद मत करो। लक्ष्मण निश्चय जीवेगा। मैं देवगीत माना नगर के राजा शशिमंडल का पुत्र हूँ। मेरे पर एक समय मेरे शत्रु सहस्रविजय ने शक्ति चलाई थी, उससे मेरा वक्षस्थल विदर गया और मैं अयोध्या के महेन्द्र नामा उद्यान में पड़ा। वहाँ मुझे महादयावान राजा भरत

ने चंदन-जल से छिंटा जिससे मेरी शक्ति चली गई, और मेरा जैसा रूप था वैसा ही हो गया।''

तब श्री राम ने पूछा-क्या तू उस गंधोदक की उत्पत्ति जानता है ?

वह बोला-हाँ, मुझे राजा भरत ने उसकी वार्ता कही थी वह ऐसी है-

राजा द्रोणमेघ की एक विशल्या नामक कन्या सर्व विद्याओं में प्रवीण और महागुणवती है। जिन शासन में प्रवीण वह भगवान की पूजा में सदा तत्पर रहती है। उसके स्नान का यह जल है। उसके शरीर की सुगंध से जल सुगंधमय हो जाता है और सर्व रोगों का विनाश करता है। उसके पूर्व जन्म की कथा यों है-

महाविदेह क्षेत्र में एक पुण्डरीक नामा देश है। उसके त्रिभुवनानंद नामा नगर में चक्रधर नामा चक्रवर्ती राजा राज्य करता था। उसकी अनंगसरा नामा एक पुत्री थी। प्रतिष्ठितपुर का राजा पुनर्वसु उसे देख मोहित हो गया और उसे विमान में बैठा ले जा रहा था कि राजा चक्रधर ने उसको पकड़ने के लिये किंकर भेजे। उनमें युद्ध होने लगा और उन किंकरों ने पुनर्वसु का विमान तोड़ डाला। तब उसने व्याकुल हो कन्याको नीचे डाल दी, सो वह एक महा दुर्गम वन में जाकर पड़ी।

वहाँ वह बहुत विलाप करती, वृक्षों से गिरे सूखे पत्र-फल खाती और बेला-तेला आदि अनेक उपवासों से शरीर को क्षीण करती रहने लगी। इस प्रकार उसने तीन हजार वर्ष तप किया। अन्त में महावैराग्य को प्राप्त हो, उसने खान पान का त्याग कर सल्लेखना मरण आरंभा। उसकी आयु के छः दिन बाकी थे कि उसे अरहदास नामा विद्याधर

ने देखी।

अरहदास शीघ्र ही चक्रवर्ती के निकट गया। और उसे कन्या के निकट लाया। जिस समय उसका पिता आया, उस समय एक अजगर उस कन्या को भक्षण कर रहा था। कन्या ने पिता को देख अजगर को अभयदान दिलाया और आप समाधिमरण कर तीजे स्वर्ग गई।

उस पुनर्वसु ने उसे बहुत ढूँढ़ा, परन्तु उसे न पा खेद खिन्न हो मुनि गया। वह महा तपकर स्वर्ग में देव हुआ और वहां से चयकर लक्ष्मण हुआ। और वह अनंगसरा द्रोणमेघ के यहाँ पुत्री हुई। पुनर्वसु ने उसके लिये निदान (तपस्या का फल मांगना) किया था। इसलिये अब लक्ष्मण उसे वरेगा।''

विद्याधर के ये वचन सुन, रामचन्द्रजी ने हनुमानजी, भामंडल तथा अंगद को अयोध्या प्रति वह गंधोदक लाने के लिये भेजा। उनने क्षणमात्र में वहाँ पहुँच भरतजी को सर्व हाल सुनाये और विशल्या के स्नान का गन्धोदक माँगा, तब भरतजी ने राजा द्रोणमेघ के पास दूत भेज विशल्या को बुलवाया और हनुमानजी से विशल्या ही को ले जाने को कहा।

हनुमानजी, भामंडल और अंगद विशल्या को विमान में बैठा ज्यों ज्यों कटक में प्रवेश करने लगे त्यों त्यों लक्ष्मण को साता होती गई। विशल्या को देखकर देवरूपिणी शक्ति निकल गई और लक्ष्मण उठ खड़े हुए, मानों निद्रा लेकर जागे हों।

रावण की मृत्यु

अथानंतर रावण सीता के समीप जा कहने लगा-

"हे देवी ! मैंने जो तुझे कपट से हरा है सो क्षत्रिय वीरको सर्वथा उचित नहीं है, परन्तु मोह कर्म महा बलवान है। मैंने पूर्व अनन्तवीर्य स्वामी के पास यह व्रत लिया था कि जो स्त्री मुझे इच्छे नहीं, उसको मैं ग्रहूँ नहीं, उर्वशी भी हो तो भी वह मेरे कामकी नहीं। यह प्रतिज्ञा पालते मैंने तेरी कृपा ही की अभिलाषा की है, परन्तु बलात्कार नहीं किया। अब हे सुन्दरी ! राम लक्ष्मण को मेरे ही जान और तू मेरे साथ पुष्पक विमान में बैठ बिहार कर !"

सीता दोनों हाथ कान पर धर गद्‌गद् वाणी से दीन शब्द कहने लगी-

"हे दशानन ! तू उच्च कुल में उत्पन्न हुआ है, इसलिये यह करना-जब संग्राम में तेरा मेरे पति से सामना हो, उस समय मेरा एक संदेशा कहे बिना तू प्रहार न करना"-

"हे पद्म ! भामंडल की बहिन ने तुम को यह कहा है कि मैं तुम्हारे वियोग के भार से महा दुःखी हूँ। मेरे प्राण तुम्हारे प्राण तक ही है और तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा ही से ये प्राण टिके हैं।" इतना कह वह मूर्च्छित हो गिर पड़ी।

उस महासती की यह अवस्था देख, रावण बहुत दुःखित हुआ, और उसके मन के भाव भी एक दम बदल गये। वह सोचने लगा कि, यदि मैं जानकी को अब राम के पास भेजूँ, तो लोग मुझे असमर्थ समझेंगे, इसलिये मैं राम को जीवित पकड़ूँगा और फिर उसे सीता सौंपूँगा, ऐसा करने में मेरी कीर्ति होगी और राम की और मेरी मैत्री

हो जावेगी।

दूसरे दिन प्रभात ही दोनों पक्षों के योद्धाओं में महा भयंकर युद्ध होने लगा। हनुमान जी हाथियों के रथपर चढ़ रणक्षेत्र में ऐसी क्रीड़ा करने लगे, जैसे कमलों से भरे हुए सरोवर में हाथी हो। तब राजा मय हनुमानजी के रथके सन्मुख आया। हनुमानजी ने उसका रथ चूर डाला, तब वह दूसरे रथ पर चढ़ आया। हनुमानजी ने उसका रथ फिर चूर डाला। तब वह दूसरे रथ पर चढ़ आया। हनुमानजी ने उसका रथ फिर तोड़ डाला मय को विह्वल देख रावण ने बहुरूपिणी विद्या से प्रज्वलितोत्तम रथ भेजा, सो मय उस पर चढ़ युद्ध करने लगा और हनुमानजी का रथ तोड़ डाला।

हनुमानजी को दबा देख भामंडल आया। जब वह दबा, तो सुग्रीव आया। जब वह भी दबा, तो विभीषण आया। जब वह भी दबा, तो श्रीराम स्वयं युद्ध के लिये उद्यमी हुए। राजा मय को विह्वल देख, रावण काल समान क्रोधकर श्रीराम पर धाया। यह देख लक्ष्मण ने उसे रोक दिया और उन दोनों में घोर युद्ध होने लगा।

जब लक्ष्मण के आगे रावण की कोई भी विद्या काम न दी, तब उसने महाक्रोध कर प्रलयकाल के सूर्य समान प्रभाव वाले और परपक्ष के क्षय करने वाले चक्र को चितारा। उसके याद करते ही वह दिव्य अस्त्र उसके हाथ में आया।

रावण ने चक्रको फिराकर लक्ष्मण पर चलाया। वह चक्र लक्ष्मण की तीन प्रदक्षिणा दे उसके हाथ में आ गया। तब लक्ष्मण रावण से कहने-लगा-

"हे विद्याधर ! अभी भी कुछ नहीं गया है। जानकी को श्रीराम के हवाले कर और यह कह कि मैं श्रीराम ही के प्रताप से जीता

हूँ। हम को तेरा कुछ नहीं चाहिये। तेरी लक्ष्मी तेरे ही पास रहे।"

तब रावण मंद हास्य कर बोला-"अरे दुष्ट ! गर्व क्या करता है ? मैं तुम सबको अभी ही पाताल लोक में भेज देता हूँ।"

उसके ये शब्द सुन लक्ष्मण ने क्रोध हो चक्र को भ्रमाया और रावण पर छोड़ा। रावण ने चक्र को रोकने को बहुत उपाय किये, परन्तु पुण्य क्षीण हो जाने से वह उसे न रोक सका। चक्र ने उसका वक्षस्थल भेद दिया, जिससे अंजनगिरी समान रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा और पर लोक को सिधारा।

रावण को मृत देख रामचन्द्रजी सुग्रीव, भामण्डल आदि से कहने लगे-

"हे विद्याधरो ! पंडितों का वैर वैरी के मरण पर्यन्त ही होता है। अब यह लंकापति मरण को प्राप्त हुआ है। वह महा नर था, इसलिये उसका उत्तम अग्नि संस्कार करना चाहिये। मंदोदरी आदि अट्ठारह हजार रानियों ने पति के शोक में आभूषण तोड़ डाले, धूल से अंग धूसर कर डाला और कुरुचि समान विलाप करती हुई वहाँ आईं। महा दयावंत श्रीराम ने सबको दिलासा दे धीर बँधाया और आप सब विद्याधरों के साथ रावण के लोकाचार को गये और कपूर, अगर, मलयागिरि, चन्दन आदि नाना प्रकार की सुगन्ध वस्तुओं से पद्म सरोवर पर प्रतिहारी रावण का दाह संस्कार किया।

फिर कृपालुचित्त रामचन्द्रजी ने कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाथ को छोड़ने की आज्ञा दी, परन्तु वे महा विरक्त हो विचार ने लगे कि- इस असार संसार में सारता का लवलेश नहीं है। एक धर्म ही सब जीवों का बांधव है। ऐसा विचार कर उनने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की और परम पद को गये।

श्रीराम का अयोध्या में प्रवेश

श्री राम और लक्ष्मण सीता से मिले और हर्ष के अश्रु बहाने लगे। विभीषण को लंका का राज्य दिया और उसका अभिषेक कराया। विभीषण ने उन्हें अपने यहाँ कुछ काल रहने की विनती की। उन्हें वहाँ सुख से रहते छ महिने मालूम ही नहीं पड़े।

एक दिन नारदजी को वहाँ आये देख, उनका यथोचित सम्मान कर उनके आगमन का कारण पूछा। तब नारदजी कहने लगे-

"हे देव ! धातकी खंड के विदेह क्षेत्र में रमण नामा नगर है। वहाँ मैं भगवान तीर्थंकर देव का जन्मकल्याणक देखने गया था, सो वहाँ से जब मैं वापिस आ रहा था, तो तुम्हारी माताओं से मिला। वे तुम्हारे विरह से बहुत व्याकुल हैं, इसलिये मैं तुम्हें लेने के लिये आया हूँ।"

तब श्रीराम और लक्ष्मण सीता सहित विभीषण की आज्ञा ले अयोध्यापुरी को चले।

जब अयोध्यापुरी में समाचार पहुँचे कि-श्रीराम और लक्ष्मण रावण को मार और सीता को साथ में ले समीप आ पहुँचे हैं, तब राजा भरत ने तोरणों तथा पताकाओं से नगर को शृङ्गारित किया, मार्ग में पुष्प बिछा दिये और चन्दन के जल का छिड़काव करा दिया।

जब नगरी इस प्रकार सजा दी गई, तब राजा भरत तथा प्रजा के लोग भाँति-भाँति के वस्त्राभूषण पहनकर और हजारों प्रकार के बाजे तथा अनेक स्तुति पाठकों को साथ में लेकर सन्मुख गये और बड़े उत्साह से श्रीराम और लक्ष्मण को मिले।

श्रीराम और लक्ष्मण ने आदर सम्मान कर अपने समस्त मित्र वा बन्धुगणों को प्रसन्न किया; और श्रीराम, लक्ष्मण और सीता ने रथ में बैठकर अयोध्या नगरी में प्रवेश किया।

श्रीराम और लक्ष्मण सीता सहित महल में पधारे । चारों माताएँ पुत्रों के समीप आयीं। माताओं को देख उनको हर्ष हुआ और वे हाथ जोड़ नम्रीभूत हो अपनी स्त्रियों सहित उनके पैर पड़े। चारों ही माताएँ राम लक्ष्मण को उरसे लगा परम सुखी हुईं; और आनन्द के अश्रुपूर्ण नेत्रों से परस्पर माता पुत्र क्षेम कुशल सुख दुःख की वार्ता पूछ परम सन्तोष को प्राप्त हुए।

शांतचित्त भरत इस असार संसार से विरक्त हो घर तजने को उद्यमी हुआ। तब राम लक्ष्मण उसे थांभ कर कहने लगे-

"हे भाई ! जब पिता वैराग्य को प्राप्त हुए, तब तुझे पृथ्वी का राज्य दिया और सिंहासन पर बैठाया, सो तू हम सर्व रघुवंशियों का स्वामी है। लोक का पालन कर और यह सुदर्शन चक्र और ये देव और विद्याधर तेरी आज्ञा में है, इस धरा को तू नारी समान भोगकर।"

तब निस्पृह भरत कहने लगा-

"हे देव ! मैं राज्य संपदा शीघ्र ही तजना चाहता हूँ। हे नरेन्द्र! अर्थ और काम महा दुःख के कारण हैं। यद्यपि स्वर्ग लोक के समान भोग अपने घर में हैं, तथापि मुझे रुचि नहीं है। मैं मुनिव्रत रूप जहाज में बैठकर संसार-समुद्र को तिरना चाहता हूँ" ऐसा सोच भरत ने श्री देशभूषण केवली के समीप जा दीक्षा ग्रहण की और महा उग्र तप कर मोक्ष को गये।

दूसरे दिन सब राजा मन्त्र कर श्रीराम के समीप आये और विनती की-

"हे प्रभो ! हम सब भूमिगोचरी और विद्याधर आपका राज्याभिषेक करें और हमारे नेत्र सफल करें।"

तब श्री राम बोले,-"तुम लक्ष्मण का राज्याभिषेक करो। वह पृथ्वी का स्तम्भ भूधर है।" तब वे श्रीराम की प्रशंसा कर लक्ष्मण के निकट गये और सब वृत्तान्त कहा।

लक्ष्मण सबों को ले राम के पास आया और कहने लगा-

"हे वीर ! इस राज के स्वामी आप ही हो।"

राम-"हे वत्स ! चक्र के धारी नारायण तुम ही हो, इसलिए तुम्हारा ही राज्याभिषेक योग्य है। इत्यादि वार्तालाप से दोनों का राज्याभिषेक ठहरा, फिर जैसे मेघ की ध्वनि समान वादित्रों की ध्वनि हुई। दुंदुभि बाजे, नगारे, ढोल, मृदंग, बीणे, तमूरे आदि वादित्र बजे और नाना प्रकार के मंगल गीत नृत्य हुए और याचकों को मनोवांच्छित दान दिये।"

दोनों भाई सिहासन पर विराजे और रत्न के कलशों में पवित्र जल भर उनका विधिपूर्वक अभिषेक हुआ। विद्याधर भूमिगोचरी तथा तीन खण्ड के देव जयजय शब्द करने लगे।

अथानन्तर विभीषण को लंका, विराधित को अलकापुर, भामंडल को रथनूपुर, रत्नजटी को देवोपुनीत नगर और हनुमानजी को श्रीनगर और हनूरुह द्वीप दिया। और भी यथा योग्य सबको स्थान दिये। अपने अपने पुण्य के योग्य सब ही ने राम लक्ष्मण के प्रताप से राज्य प्राप्त किये।

हनुमानजी का दीक्षा लेना

हनुमानजी पूर्व पुण्य के प्रभाव से श्रीनगर में राज्य करने लगे और हजारों विद्याधर उनकी सेवा में रहने लगे। कालान्तर सर्व ऋतुओं में श्रेष्ठ वंसतऋतु आई। वन में आम्र वृक्षों में मंजरी आई और कदम्ब के झाड़ों में फूलों के गुच्छे के गुच्छे लटकने लगे। इसी प्रकार बकुलादि नाना वृक्ष अपने समयानुकूल भली-भाँति फूल गये।

सरोवरों में कमल खिल गये और उन पर भ्रमर गुंजारने लगे। वे त्रिलोक विजयी कामदेव के छत्र समान शोभ ने लगे। कोयल का कूकना वही बाजों का शब्द है, भ्रमरों की झंकार वहीं गीतों की सुरीली आवाज है, और मलयाचल का सुगन्धित वायु गन्धर्वगुरु बनकर मानों वन की श्रेणियों को नृत्यु कराता है। ऐसा कोई भी वृक्ष दिखाई नहीं पड़ता था, जिसमें पुष्प न लगे हों और ऐसे कोई पुष्प न थे, जिन पर भ्रमर गुँजार न करते हों।

इस प्रकार जब वसंत ऋतु पृथ्वी पर फैल रही थी, तब हनुमानजी जिनेन्द्र भगवान की भक्ति में दत्तचित हो अति हर्ष से हजारों स्त्रियों सहित सुमेरु पर्वत की ओर चले; उनके चलते समय हजारों विद्याधर संग हो लिये।

वे अनेक वनों में जहाँ शीतल मंद सुगन्ध चलता है, जहाँ देव देवांगनाएं रमती हैं, जहाँ अनेक सरोवर हैं, जहाँ नाना प्रकार के पशु-पक्षियों के युगल विचर रहे हैं, और जहाँ सर्वजाति के पत्र, पुष्प और फल शोभा दे रहे हैं, क्रीड़ा करते और अनेक गिरियों में अकृत्रिम चैत्यालयों के दर्शन करते और स्त्रियों को पृथ्वी की शोभा दिखाते सुमेरु पर्वत पर आये।

उन्होंने विमान से उतर चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणा की। हनुमानजी ने रणवास सहित हाथ जोड़ नमस्कार किया और राणी सहित भगवान की पूजा करते ऐसे शोभने लगे, मानों सौधर्म इन्द्र इन्द्राणी सहित पूजा करता हो। पूजा वंदना करने के पश्चात् हनुमानजी ने वीणा बजाय अनेक राग गाकर अद्भुत स्तुति की।

यद्यपि उनका भगवान के दर्शन से बिछरने का मन नहीं था, तथापि चैत्यालय में अधिक न रहे। जिनराज के चरण उरमें धर, वे मंदिर से बाहिर आये और हजारों स्त्रियों सहित विमान में आरूढ़ हो सुमेरु की प्रदक्षिणा दे भरत क्षेत्र की ओर प्रयान किया। मार्ग में सूर्य अस्त हो गया। कृष्ण पक्ष की रात्रि यद्यपि तारा रूप बन्धुओं से मंडित थी, तो भी सूर्यरूप पति बिना नहीं शोभती थी।

हनुमान जी पृथ्वी पर उतर एक सुन्दर दुन्दुभि नामा पर्वतपर ठहर गये। तब रात्रि के समय आकाश से एक देदीप्यमान तारा टूटा। सो उसे देख हनुमान ने विचारा कि इस असार संसार में देव भी कालवश हैं। ऐसा कोई नहीं है जो काल से बचा हो। बिजली के चमत्कार और जल की तरंग समान शरीर क्षणभंगुर है।

इस संसार में जीव ने अनंत भव दुःख ही भोगे। विषय के जिन सुखों को यह जीव सुख मानता है वे सुख नहीं, दुःख ही हैं। जैसे कोई जीव थोड़े दिन का राज्य भोग वर्ष भर त्रास भोगे, तैसे ही यह मूढ़ जीव अल्प दिन विषयों के सुख भोग अनंतकाल पर्यन्त निगोद के दुःख भोगता है, ये भोग पाप के मूल हैं। इनसे तृप्ति नहीं होती है।

यह मनुष्य देह जो मैंने महा कष्ट से पाई है, वह पानी के

बुदबुदावत् क्षणभंगुर है; यौवन झागों के पुञ्ज समान अति असार और दोषों से भरा है। यह जीतव्य स्वप्न समान है; और कुटुम्ब का संबंध वृक्षों पर के पक्षियों के रात्रि के मिलाप समान है।

यह मूढ़ जीव काम में आसक्त हो, अपना भला बुरा न जान पतंग समान विषय रूप अग्नि में पड़ महा भयंकर दुःख पाता है। अब तक मैं अज्ञान से मेरी स्त्री को नहीं छोड़ सका हूँ, सो मेरी बड़ी भारी भूल है। स्त्रियों के माँस के पिंड समान कुचों में कहाँ रति है?

स्त्रियों का मुखरूप बिल जो दांतरूप कीड़ों से भरा है और तांबूल के रस से लाल छुरी के घाव समान है, उसमें कैसे शोभा हो सकती है ? और उन्माद से उपजी वायु विकार समान स्त्रियों की चेष्टा कहाँ प्रीति हो सकती है ? नारियों के मल मूत्रादि से पूर्ण और चर्म से वेष्टित शरीर के सेवन में सुख कहाँ हो सकता है ?

जब यह जीव इच्छा मात्र से उत्पन्न होने वाले देवों के भोगों से तृप्त न हुआ, तो मनुष्य के भोगों से कैसे तृप्त हो सकता है ? जैसे इंधन का बेचने वाला सिर पर भार धर दुःखी होता है, तैसे ही राज्य के भार का धरने वाला दुःखी होता है।

"यह जीव मेंढक समान मोहरूप कीच में मग्न लोभरूप सर्प के ग्रसने से नर्क में पड़ता है।"

ऐसा चिंतवन कर, सांसारिक शारीरिक भोगों से उदास हो हनुमानजी उस मार्ग से चलने को उद्यमी हुए जिससे जिनवर सिद्धिपद को प्राप्त हुए।

प्रभातकाल में महा वैराग्य से भरे और जगत के भोगों से विरक्त हनुमानजी मंत्रियों से कहने लगे-

"पूर्वकाल में जैसे भरत चक्रवर्ती तपोवन को गये, तैसे हम भी जाते हैं। तब वह उद्वेजित हो कहने लगे-

"हे देव ! हमको अनाथ न करो। प्रसन्न हो हम भक्तों का प्रतिपालन करो।"

हनुमानजी-"यद्यपि निश्चय से तुम मेरे आज्ञाकारी हो, तो भी तुम मेरे हितु नहीं, अनर्थ के कारण हो। जो भव समुद्र से पार उतरते हुए को उसमें फिर डालें, वे हितु नहीं, शत्रु हैं। जब यह जीव निगोद में दुःख भोगता है, तब माता पिता भाई मित्र आदि कोई सहाय नहीं करता। यह मनुष्य देह और जिन शासन का ज्ञान पाना बुद्धिमानों को प्रमाद करना उचित नहीं, जैसे राज्य के भोग से, तैसे तुमसे भी मुझे अप्रीति हुई है।"

यह वार्ता जब रणवास की स्त्रियों ने सुनी, तो वे खेद-खिन्न हो विलाप करने लगीं। हनुमानजी ने उनको समझाया शांत चित्त की; और अपने बड़े पुत्र को राज्य दे, चैत्यवान् नामा वन में गये; जहाँ नाना प्रकार के वृक्ष शोभ रहे हैं और सूवा, मेना, मयूर, हँस,कोयल, भ्रमर आदि सुन्दर शब्द कर रहे हैं।

वहाँ धर्मरूप रत्नराशि रूप उत्तम योगीश्वर को देख, वे पालकी से उतरे और उनके पास जा हाथ जोड़ कहने लगे-

"हे नाथ ! मैंने संसार वन में अनन्तकाल भ्रमण कर नाना प्रकार की कुयोनियों में दुःख सहे हैं। अब मुझे संसार भ्रमण से थके हुए को मुक्ति की जहाज, तुम्हारी दिगम्बरी दीक्षा देओ।"

मुनि की आज्ञा हुई-"हे भव्य ! तूने भली विचारी, तू उत्तम है, सो दीक्षा ले, यह जगत असार है, शरीर विनश्वर है, सो शीघ्र

ही आत्मकल्याण कर।''

तब केवली की आज्ञा प्रमाण कर हनुमानजी ने सब परिग्रह तज, अपने सुकुमार हाथों से केशलोंच किये; और महाव्रत को अंगीकार कर, दीक्षा धर दिगम्बर हुए। तब आकाश में देव धन्य-धन्य शब्द करने लगे और उन्होंने कल्पवृक्षों के पुष्पों की वर्षा की, उनके साथ साढ़े सात सौ राजाओं ने राज ऋद्धि तज जिनेन्द्री दीक्षा धारण की, और कई एक अल्पशक्ति अणुव्रत धर श्रावक हुए।

वे महा घोर तप के धारक, जल समान निर्मल, अग्नि समान कर्म काष्ट को भस्म करने वाले, पृथ्वी समान क्षमा के धारी और तेरह प्रकार के चारित्र पालते हुए हनुमान जी विहार करने लगे।

स्नेह के बन्धन से रहित मृगेन्द्र समान निर्भय, समुद्र समान गम्भीर, सुमेरु समान निश्चल यथा जातरूप के धारक, क्षमाख्प खड्गको ले बावीस परिषह को जीतनहारे महातपस्वी हनुमानजी शास्त्रोक्त मार्ग से चलने लगे। पाँवों में सूई समान तीक्ष्ण तृण की सलियें चुभे, तोभी उसकी सुध न करते और शत्रुओं के स्थान में उपसर्ग सहने के निमित्त वे विहार करने लगे।

तप के प्रभाव से शुक्लध्यान उपजा। शुक्लध्यान के बल से मोहका नाश कर और ज्ञानवरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म को हर लोकालोक को प्रकाशक केवलज्ञान प्रकट हुआ, जिससे वे अघातिया कर्मको भी दूर कर ''तुंगीगिरि'' से सिद्धपद को गये, जहाँ वे अनन्त गुणमयी सदा निवास करेंगे।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्री हनुमान चरित्र भाषा दोहा

चौपाई

स्वामी सुवृतनाथ जिनन्द, सुमरत होय सिद्ध आनन्द।
नासौ पाप भली मति होई, नाय सीस जोरौं कर दोई॥१॥
आदिनाथ तिन सेवा करौ, मन वचन काय चित्त उर धरौ।
अजितनाथ वन्दौं जगसार, लहौं ज्ञान पाऊँ शिव द्वार॥२॥
सम्भवनाथ जपौ मन लाई, बैठे धर्म कर्म छे जाई।
नाउ सीस अभिनन्दन देवं, सुर नर मुनि आए सेवं॥३॥
स्वामी स्वमति देहु मति होहु, रात दिवस मन राखों तोह।
पदमप्रभू की सेवा करो, ज्यौं संसार न बाहर फिरौं॥४॥
पुनियन ऊंच देव सुपास, नाम लेत सब पूरै आस।
चन्द्रप्रभू जिन गुनह निधान, सुमरत होइ पाप छै मान॥५॥
उज्ज्वल पहुपदन्त जिननाथ, नमौं सीस धर मस्तक हाथ।
जिनवर सीतल वन्दौं पाउ, देह स्वामी वैकुण्ठह ठांउ ॥६॥
जिन श्रेयांस गुन जग विख्यात, स्वामी करो करमकौ थात।
वासुपूज गुन कह नहि जाई, सौ है लाल वर्ण तसु काई॥७॥
विमलनाथ के सेऊं पाउ, निरमल मति कौं करहुं साज।
जय जय स्वामीनाथ अनंत, काटे करम गये शिव पंथ॥८॥
धरमनाथ वंदहु परभात, जासौं पाप होई शुभ सात।
शांति करन वंदहु जिन शांति, सौह देह कनक तस कांति ॥९॥
जय जय स्वामी जिनवर कुन्थ, भूले भय दिपावन पंथ।
चरन अरह जिन तेरे गहौं, जातैं ज्ञान अभ्यासक लहौं ॥१०॥

मलनाथ सेउ तस पाद, मारौं करम कियौ दहवाद।
मुनसुवृत कौं करहु वखान, जाई क्रोध माया अरु मान॥११॥
जपौ देव नमकरहु आस, अशुभ करम की काटी फांस।
नेमस्वामी वंदौ निरग्रंथ, तजी त्रिया गये शिव के पंथ॥१२॥
पारसनाथ की करौं वंदना, सही परीस्या कामदंतना।
वीरनाथ वन्दौं जग सार, राखौं धरम तनौं व्याहार ॥१३॥
जिन चौवीस वंदौ जगदीस, गणधर चरन नमौं कर शीस।
दीप अढ़ाई जिते मुनिंद, ते सव वंदौ कर आनंद ॥१४॥
सुमरूँ सरस्वती मन पाऊँ, केरों स्वामती वुध पसाउ।
मैं मुरख अंत अपढ्यो अयानौं, पंडत जनमो विनती मानौं ॥१५॥
अक्षर पद नवि पायौ भेद, लहौ न अर्थ भयौ अतखेद।
लघु जानौं नहिं दीरघ मान, करन कहौं मैं हनूं चरित्र॥१६॥
स्वामी नमौं मतिकरौ पसाउ, उपजै बुद्धि होई विसतार।
तुम प्रसाद कर लक्ष न गहौ, हनु कथा वरननकूं कहौं॥१७॥
वरसे मेउ अधिक असरार, सरवर ऊपर मूसर धार।
पान सरोवर बूंद न रहै, मेघे दोस काहे को कहै॥१८॥
श्रीगुरु तोहै विधि दातार, भूले मारग लावनहार।
ग्यान विवेक सीख नविफुरै, स्वामी गुरु काहौ धौ करै॥१९॥
ग्रह पुछ मुन वंदौ एह, जाकौं सुर लै गयौ विदेह।
लाज छोड़कर वारंवार, वारंवार, हनूकथा कौ करौ विसतार॥२०॥

वस्तुबंध

प्रथम हि वंदौ देव सुवृत्त, जिन चौवीसह चरन लागौं।
गणधर मुन जिन वंदियौ, प्रनमी सारद माय ॥२१॥

चौपाई

जंबूद्वीप जानै संसार, ताकि शोभा लहै न पार।
तामैं भरतक्षेत्र अति भलौ, जोजन पाँच छवीसत छलौ ॥२२॥
मेरु सुदर्शन जोजन लाख सोहैं गजदन्तौं चारी पाख।
नदी दहनकौं संख्या कहै, सुरनर खेचर तहाँ सव रहै॥२३॥
मेरु सुदर्शन दक्षन दिसो, विद्याधर नगरी बहु वसो।
पुरपट्टन देवगढ़ ग्राम, दीर्घ कोट सोहै अति दाम ॥२४॥
नदी नाल सोहै चहूँ पास, तामैं कमल जु करै विकास।
कुवा वाउरी बहु पोखरी, ते दीसै निरमल जल भरी॥२५॥
वन की शोभा अधिक विस्तार, घरी महूरत रचौ विचार।
बेल करोंदा कैंथ करीर, निंबू आम छुहार गंभीर॥२६॥
सोलह खेर वांस के भिरे, सीसौ सगौं नातेंदू खड़े।
कांक हरि धामन वेर सुचंग, देखा हरद आम पतंग॥२७॥
चौंच मोच नारंग सुरंग, निंबू आम जांमू अय मातुलिंग।
अमृत कठहन खडहर केर, मंडफ चढ़ी दाखकी वेर॥२८॥
चोल सुपारी है अति घनी, अतूत अंजीर अरु चिचनी।
बहुत बादाम आम अखरोट, बहुत जायफल फरै समोट॥२९॥
बूडौ मरुवौ बहुत बसाई, बेलु सिहारी चम्पौ राई।
जुही पाडर अरु सिर फंद, चमेली करना अरु मचकुंद ॥३०॥
बहुत मालती अरु कनयरू, चन्दन अगर वांस सुन्दरू।
केतकी के सुगन्ध, भमर वास अत सीतल मन्द॥३१॥
वरनन करत होय विस्तार दस लख जात कही कवि भार।
सो है विद्याधर कौ देस, गड पर वह पुर वसै असेस॥३२॥

आदित नग्र पुर भेदन नाव, सो है जैसे इन्द्र कौ ग्राम।
राजा राज करै प्रहलाद, धरम ध्यान तहाँ चले अनाद ॥३३॥
पालै परजा चालै ल्याइ, पुनवंत पुट भेदन राइ।
केतुमती घर त्रिया सुजान, गुन गम्भीर रूप की खान ॥३४॥
पुत्र एक तसु पवनकुमार, धर्मवन्त बहुत बुद्धि विचार।
रूपवंत विवेक सुजान, राखै छह दरसन कौं मान॥३५॥
वसै नगर अत अधक सुवासु, सात कोट फेसो चहुं पास।
खाई सो है पानी कर भरी, ज्यौं कैलास फिरी सुरसरी ॥३६॥
ऊंचौ मंदर पौर पगार, सात खननि ऊपर विस्तार।
बहुत चतेरे चतेरौ थान, जैसे सोहै सुरग विमान ॥३७॥
चौपरके तौ बनै बजार, बैंच पटेरो मोति बहार।
बनै आभास उतंग अभंग, ऊपर दीसै धुजा उतंग॥३८॥
मंडप वेदी सोहै भली, पांच वरन रतननसौ जरी।
बहुत चतेरे कियौ चतेर, सोहै जैसो सुदरशन मेर॥३९॥
ज्ञानी मुनीवर बैठे घनै, राखै चित्त सुध आपनैं।
करैं वृती दस लक्षण काय, पूजै आव मुक्त कौ जाई॥४०॥
श्रावक लोग वसे, धनवंत, पूजा करै जाप अरहंत।
ऊपरा ऊपरी पुन की आस, ज्यौं अहमिंद्र स्वर्ग सुखवास ॥४१॥
ठाडा पंडित कहै पुरान, ठाडा जिनवर पूजै आन।
श्री जिनवर की करै वंदना, देव शास्त्र गुरू राखै मना॥४२॥
ठाडा मंगल बधे घुमंत, ठाड बहुत माला झलकंत।
ठाडा वात सिंधांते वेद, पडै पास बूझै सब भेद॥४३॥
ठांव बहुत आखरे होइ, और बात सुनझै नहिं कोइ।
घर घर मंगल होय विवाह, घर घर काम निकरह उछाह॥४४॥

घर घर बिंब प्रतिष्ठा होय, घर घर दान देय सब कोय।
घर घर श्रावक देह अहार, घर घर सिध बनौं व्यौहार।।४५।।
सुख संपत पालै आचार, पुन्य पाप कौ करै विचार।
राज्य करै इन्द्र समभोग, अति सुख पावै परजा लोग।।४६।।

वस्तु बंध

दीप जंबू बहुत विस्तार, क्षेत्र भरत तसुमधि सोहै।
पुरुससला का ऊपजै, सुर फ़निन्द्र तसु मन मोहै।।
क्षेत्र ग्राम गढ़ वरनयौ, विद्याधर कौ देस।
और कथा आगैं भई, सो सब कहौं असेस।।४७।।

चौपाई

क्षेत्र भरत उत्तम जग जान, मेरु दिशा पर वंश बखान।
खवारसेन अति देसु महंत, नगर महेन्द्र की शोभा संति।।४८।।
करै राज भूपाल महिन्द्र, जैसे स्वर्ग भोगवै इन्द्र।
हटवे गात सुघरनी नाम, रूप कला सुरसुन्दरी जाम।।४९।।
ईकोत्तरसै हैं पुत्र विशाल, पुत्री एक महासुकमाल।
नाम अंजनी सुन्दरता, सुता की उपमा दीजे कासु।।५०।।
ज्यौं सामुद्रक लक्षन वखान, त्यौं राजघर अंजनी जान।
हेमांचल उपजी सुरमाई, त्यौं राजा घर सौहै सुन्दरी।।५१।।
रूपकला ले बात विवेक, अरथ पुरान जाने अनेक।
सो वृत पालह बहुत विचार, पाप पुन जानै व्यौदान।।५२।।
चंद्र वदन अति नैन विशाल, देखी राजा जोवन बाल।
मन में अति चिंसा ऊपजी, भई विवाह जोग अंजनी।।५३।।
मंत्री वेग बुलाए चार, वर सुन्दर कौं करहु विचार।
वर जोग देखी अंजनी, मेरे हिये चिंता ऊपनी ।।५४।।

देवते सागर बहुत सु जान, बुधवंत सुर गुरु समान।
पहलौ मंत्री बोलौ एहु, यह सुन्दर रावन कौ देहु ॥५५॥
विद्या साहस चौदा सिध, भुगतै अरध चक्र की रिध।
तीन खण्ड धरती भोगवैं, दुरजन कौं तप देखत गरै॥५६॥
विद्याधर जें भूमसंग फिरै, निसवासरते सेवा करै।
और थांन दीजैं अंजनी, करै कोप लंका को धनी॥५७॥
इतनी कहकरि सोमों गियौ, दूजौ सुमति मंत्री बोलयौ।
दस मुख जोग नवि देह कुँवार, सहस्र आठ दशराजा के नार॥५८॥
रूप कलांते सोहै खरी, सबकी जेठी मंदोदरी।
बारह वरस की कन्या होई, सोला वर दीजे सोई॥५९॥
तौ रावन विरधु अवस्था होई, निंदे लोगु हसैं सब कोई।
रावन बूडौ कैसे गनै, ताकौं दीनैं कैसे बनैं ॥६०॥
मेघनाद दूजे बल बंड, वरवे शत्रु करै सत खंड।
इंद्रजीत है लहरौं वीर, बहुत करन की सहैं सो वीर॥६१॥
दसमुख पुत्र भले हैं एहु, दो मैं जानौं ताकौं देउ।
शीख हमारी जो हिय धरौ, जो मन धावै सोई करौ॥६२॥
मंत्री सुमत बात कह रहौ, तब रावन मंत्री बोलियौ।
इन्द्रजीत दीजे सुन्दरी, तो मेघनाद चित्त माने बुरी॥६३॥
दोई भाई न होय विरुध, दोऊ भी रहैंगे अत जुध।
तब कलंक सुन्दरि को होई, यह बात विचारै सब कोई॥६४॥
मेरी शीख करहु परवान, कनकनगर है उत्तम थान।
राजा हिरननाभि कौ वास, विद्याधर कौ से वै पास॥६५॥
सुमन नाम ताकै सुन्दरी, जैसे इन्द्र तनी अपक्षरी।
पुत्र एक ताके घर भलौं, नाम अरिन्हु पुनिते मिलौ॥६६॥

रूप गुनन के इन्द्र समान, गल्यौ काम अरु देव कौं मान।
कहौ हमारौ कीजौ एहु, कुवर अरिजय पुत्री होय॥६७॥
तारावन के सुनियौ वेण, धुन्यौसी मीचे दोइ नैन।
साता वचन बोले ते छिना, राजा बात सुनो मो तना॥६८॥
वरस अठारा तनौ कुवार, तब व्है सोलह संजम धार।
अवध ज्ञानधार मुन कह ही, इही बात तुम जानौं सही ॥६९॥
पुरु विना जोऽस्त्री होई, ताकौं आदर करह न कोई।
चक्रवर्त की पुत्री होहु, तौ पुरुष विना दुख पावै सोई॥७०॥
संजय मन्त्री इम कही, वाकौं पुत्री दीजे नहीं।
राजा बात सुनो हम तनी, वर उत्तम कुंवर जोग अंजनी॥७१॥
आदतपुर भेदन सुविसाल, करै राज्य प्रहलाद भुवाल।
रानी केतुमती घरभली, इन्द्र सची ज्यौं जोरी मिली॥७२॥
पवनंजय तसु बडौ कुवार, धरमवंत गुण लक्षण सार।
कांत दिवाकर सोहै देह, सोलह कला चन्द्रमुखी एह॥७३॥
पंडित अधिक विवेक सुजान, राखै जैन धर्म कौं मान।
बहुत बात अब कहिए नहीं, पवन जोग यह पुत्री सही॥७४॥
यह उत्तर सत्य जब दयौ, राजा हर्ष मन तब कियौ।
भली बात मंत्री तुम कही, पुत्री पवनहि दीजे सही॥७५॥
बोलै तबै साथ के लोग, भलौ बुरौ सु वरु यह जोग।
पोते पुन होई जब घनौं, होई सु कारज सज्जन तनौं॥७६॥
राजा बात विचारत संत, तबलौं आयौ पाय वसंत।
फूलत फरत भई वनराई, भवर सामुहें वासु लैआई॥७७॥
करे सब दुपक्षी कौ किला, गावै त्रिया गीत तब भला।
रमैं पुरुष बहु मास वसंत, करै भोग दीसै बहु संत ॥७८॥

बैठो सभा सहित माहेन्द्र, गगन पंथ तहां देख्यो इन्द्र।
सोहे रतन बिम्बान अनूप, चले दीप नन्दीस्वर दीप ॥७९॥
जै जै काल करे असमान, गीत नृत्य वाजित्र वखान।
करे अष्टानका वृत की सेव, चले दीप नन्दीश्वर देव॥८०॥
राजा चिज विचारै बात, हम पुन जै जै जिनवर जात।
कीजे पूजा चरन जिनराई, वोठे धर्म असुभ दये जाई॥८१॥
मानुषोत्र परवत विच ताहि, मानुष विद्याधर गवनुजु नांहि।
राउ महेन्द्र सभासो कहै, नन्दीश्वरकौं जानन लहै॥८२॥
गड कैलास वडौऽस्थान, श्री आदिनाथ पहुँचे निरवान।
कनक रतन बहुतक तहां खचे, जिन चौबीस जिनालय रचे॥८३॥
रत्नबिम्ब सोहै अन भले, कोट दिवाकर लोपै जले।
धनुष पांच सै ऊंची काय, जिनवर शोभा कही न जाय॥८४॥
विद्याधर नर मेले घनैं, करे महोछे जिनवर तनैं।
सैव कहैं बात विलास, चलौ जात मिल गडक विलाख ॥८५॥
रचौ विम्वान रतननिमनि जडौ, नगर लोग सब वारौ वडौ।
गगन पंथ उड चले विमान, गमन करत नहि दीसे भानु॥८६॥
जै जै करत तहां सब भए, विद्याधर कैलासै गए।
मन्त्र सुद्ध धर मस्तक हाथ, भाव भगति वन्दे जिननाथ ॥८७॥
सपर पहर पीतांवर चीर, झारी हाथ लई भर नीर।
जिनवर आंगैं दीनी धार, जनम पाप प्रक्षाले क्षार॥८८॥
कुंकम केशर घस वावना, मांउ कपूर मेल्यौ अत घना।
जिनवर चरनन पूजा करी, और जन्म कौं थाती घरी॥८९॥
राई भोग केतकी सुवास, सोमा जैसी चंद उजास।
जिन पद आगैं धरे पखार, मनौं सरोवर बांधी पार॥९०॥

केतुकी चयौ अरु मालती, पाडर कमल जाइ सेवती।
जिनवर चरन आगैं धरैं, पूजा मनो इन्द्र जिम करै॥९१॥
घेबर फेनी सेव सुहार, लाडू गूजा सोवन थार।
जिनवर पग आगैं विस्तरै, मुकति पंथ कौं संवर करै॥ ९२॥
दीपक मिन्न सेनीक भये, सुवरन थार हाथ धर लिये।
जिनवर आगे धरे उतार, मानौं करम दिये परजार॥ ९३॥
अगर जगर किसनागरु धूप, चंदन मलयागिर गाल अनूप।
जिनवर आगैं चरण खेइयौ, पानौं पाप घूम दिस गयौ॥९४॥
चौंच मोच निंबू वाना रंग, दाख छुहारे केरा मातुलिंग।
जिनवर पद आगैं केरियौ, मानौं सिवकौ साथी कियौ॥८५॥
जल चन्दन अक्षत चरु माल, दीप धूप सु वरन कौ थाल।
जिनवर आगैं अरघ जु कियौ, सुवरन झारी पानी दियौ॥ ९६॥
सीस हाथ धर वंदौ देव, गुनानुवाद पड़ियौ बहु भेव।
जय स्वामी तुम जगत उज्यारे, हम संसार उतारन हारे॥ ९७॥
भगति वंदना तेरी करौ, मुकत रमन कौं संवर धरौं।
नित उठ करौ तुमारी सेवा, तुमकौं पूजौ सुरपत देवा॥ १८॥
जिनवर मो पर करहु सनेह, कुगत कुशास्त्र निवारो एह।
और न कछु मांगौ तुम पास, देहु स्वामी वैकुंठवास ॥९९॥
कर वंदना चले खग जान, कनक सिला देखी शुभ थान।
देखे विद्याधर शुभ नाम, राय महीन्द्र लयौ विश्राम ॥१००॥
ऊपरा ऊपरी चरचा करौ, धरम पुरान अरथ उचसौ।
वन्दे देव भयौ अहलाद, औपौ तहां राइ पहलाद ॥१०१॥
राय महेन्द्र अंकौं भर लयौ, भेटत दुहू बहुत सुख भयौ।
सेवै कुसल कीबू कौ सार, कुसर सबै परजा व्योहार॥१०२॥

अत आनंद हू मन भयौ, ताकौ वरनकु जाइ न कह्यौ।
कनकसिला सौहे अनभांत, बैठे तहां दोइ भूपोत॥१०३॥
घरी एक जब औसर भयौ, राय महेन्द्र बूझत वलयौ।
सुनौं बात प्रहलाद नरेश, व्यापै चिंता बहुत कलेसु॥१०४॥
मो पुत्र अंजनी सुन्दरी, रूप विवेक कला चातुरी
वर जोग जब कन्या भई, निस वासर मो निद्रा गई॥१०५॥
चिन्ता व्यापी अधिक शरीर, भावै नहीं अन्न अरु नीर।
राजकुमार देखे सब टोह, कोई मनह न आयौ मोह॥१०६॥
रावन को जो दीजे धिया, तो सहस आठ दस राजा के त्रिया।
गत जोबन सब कोऊ भनै, तातें सुन्दर देत नहिं भनै॥१०७॥
इन्द्रजीत दीजे सुन्दरी, तौ मेघनाद चिंत मानै बुरी।
होई विरुद्ध दोई वर जुरे, तातैं बात विचारन परे॥१०८॥
कनकनगर राजा हिर नाम, सोलह कला चन्द जिम आम।
ताके पुत्र अरिन्दकुमार, रूप कला काम औतारु॥१०९॥
वरस अठारह कौ जब होय, ले तप मुक्ति पौचे सोय।
अवधज्ञान भासि यौं मुनी, ताकौं क्यौं दीजे अंजनी॥११०॥
पुटभेदन राजा प्रहलाद, केतुमती क्रिय कोकिला सोद।
एक पुत्र तस पवनकुमार, रूपवन्त गुन पंडित सार॥१११॥
मन्त्री लोग कहै सब कोई, पवनजोग यह पुत्री होय।
मन वांछत हम पूरे काज, दरसन भयो तुम्हारौ आज॥ ११२॥
हम उपर तुम करहु वसाव, राखौ बाल हमारौ राव॥११३॥
जो बात तुमारे चित्त सुहाय, तौ पवनंजय दीजे नांहि॥११४॥
सुनि बात बोलै प्रहलाद, मनमै मानैं अति अलहाद।
राहु महेन्द्र बचन जुम कहैं, सुनि बात हम अतिसुख लहै॥ ११५॥

बहुत कवर हम देखे टोह, पवन जोग कन्या नहि होय।
अब हम ऊपर कीजे दया, करौ विवाह पवन तुम धिया ॥११६॥
कनक मुन्द्रका हीरा जरी, सोहै अति के रतन मुंजरी।
दाख वेल अर आमै चरी, एक सिद्य अरु पाखर परी॥११७॥
राजा हो महिंद्र समान, दल वाल साह उदइ समान।
दोइ बराबर वर कुल आचार, धर्म बल दोई गुन सार॥११८॥
दोइ राइ सुजान विवेक, जानैं जोतिक अरथ अनेक।
पांव पांउरी सिवासु दियो, राजा दुह विनय अत कियौ ॥११९॥
देखी लगुन पवन अंजनी, दोई विवाह प्रीत अति घनी।
डारै सवै असुभ सब जोग, पीरा दुःख न व्यापै रोग ॥१२०॥
बोलै विप्र सुनौं हौ राउ, दिन तीजे यह कीजे व्याहु।
दोई सिध वरकन्या सही, आंगे वरस एक दिन सही॥१२१॥
विप्र वचन कीनैं परवान, मनवांछित तिन दीने दान।
हरद सुपारी नुकसौ आचारु, सुन्दर कौं वरु वाई कुवार ॥१२२॥

वस्तुबंध

राई पौचे सिखर कवि लाखा, जिन चौवीसह चरन वन्दे।
आठ विधसौं पूजा रची गुन, जिन पड़े आनन्दे ॥१२३॥
गड़कैला सहमता समय गये प्रहलाद नरिद।
भई सुपारी पवन की, दुहू पक्ष आनन्द॥१२४॥

चौपाई

बाजे नाद निसाने घाई, भयौ अनन्द पहुंचे घर राई।
ब्याह तनै होई भंगल चार, सज्जन मित्त मिले परवार ॥१२५॥
पवनंजय सुन सुन्दरि रूप, सुर कन्याते अधिक अनूप।
कामबाण वेध्या सरीर, तब ही ज्यौ अतु अरु नीर॥१२६॥

जब कामी कौ व्यापै काम, जुगत अगुज तौ न सूझै काम।
चिंता उपजी, बहुत सरीर, कायरु होइ सुभट वरवीर ॥१२७॥
स्त्री रूप सुनौं जब नाम, कामी चिंतु रहै नहिं ठाम।
कामबान पैरौं तछना, स्वास उस्वास सुलेह अत घना ॥१२८॥
काम जुर व्यापै तसु देह वैसान्दरु ज्यौं दाहे गेह।
घरी एक नहीं थिरता लेइ, मेटे धरम पाप फल सोइ ॥१२९॥
जावैं काम की होई अवाज, तव विषसम झाडैं पानी नाज।
जे नर होइ काम के वासू, स्त्री कथा सुहावै तासू॥१३०॥
मदन की चेष्टा जाके अंग, गीत नृत्य भावै तव रंग।
काम बान तुसु हनैं सरीर, मूछगित आवै तसु वीर॥१३१॥
व्यापै काम मरैं नर पाप, उपजै देह सोग संताप।
दुःख भंजै नर एते जाम, जब ही आई उदीथै काम॥१३२॥
सुन्यौ रूप सुन्दर कौं बाई, लियौ मित्र प्रहस्तु बुलाई।
बोलै पवन सुनौं हो मित्र, बात हमारी एक ही चित्त ॥१३३॥
सुना महेन्द्रराज अंजनी, सुणौं रूप चिंता उपनी।
सुंन्दर वेग दिखावहु मोर, मित्र काम बहु तुमते होय॥१३४॥
काम अंजनी तुन कीनौं क्षार, करहू कछु सीतल उपचार।
जब ए प्रान निकरहैं मूढ, अतः दुख तबही सालह तुंड ॥१३५॥
जबै अपक्ष मित्र को होई, करै सहाव मित्र जु होई।
मन की बात कहौं मैं तुझ, राखैं मन मैं अपने गूढ़ ॥१३६॥
सुनी बात पवनंजै तनी, बोलै मित्र बुद्धि तिसु घनी।
छाड़ौ पवन चिंता मन तनी, वेग दिखाहौं तुम अंजनी॥१३७॥
जानौं पवन मित्र को बोल, भयो सु सुमन कियो अडोल।
कहै बात बैठ इक थान, दिन गत भयौ अंथयौ भान॥१३८॥

दसौं दिस मुख कालम भयौ, जैसे कांत बिना होई दियौ।
कामी जन सेवै निज काम, धर्मवंत ले जिनकौ नाम॥१३९॥
भयौ प्रभात रयनि सब गई, पूरव दिसते पीरी पई।
तेजवंत रवि ऊंगौ जाई, पंथीपंथ चलौ सब कोई ॥१४०॥
औसरु पाय बोलियौ बाई, चलौ मित्र सुन्दर के ठाई।
सुन वचन पवनजै तनौं, रचौ विमान मनोहर बनौं॥१४१॥
दोई गगन पंथ चड गये, सुन्दर मंदिर ठाडे मए।
देख गवाछ भलौ तह थान, उतरे दोई मोर विमान॥१४२॥
परछनपन देखो तसु रूप, सुर कन्या ते अधिक अनूप।
मन मैं भयौ बहुत संतोष, जैसे मुनवर पाये मोक्ष॥१४३॥
सुन्दर रूप रहौ मन लाई, तेहि औसर आई तसु धाई।
सुन्दर सुनौं बात इक भली, पवनकुमार तसुजोरी मिली॥ १४४॥
पुत्री पुन उदय भयौ आय, पायौ कंतु मनोहर बाई।
रूप कला गुण चतुराई, कत तुमरौ है सुन्दरी॥१४५॥
पूरव जन्म सुक्रत संग्रयौ, कै तुम दान सुपात्रहि दयौ।
पूजे देव बहुत मनुलाई, तासु पुत्र वर पायौ बाई॥१४६॥
दूजी सखी सुकेसी नाम, गैर हाथ दे बोली ताम।
मधुमाला तुम बोलो कूड, पापी पवन विकल मत गूढ ॥ १४७॥
राउ महिन्द्र तनी मत चली, बात विचारत कीन्ही भली।
नाम पवन तन चपल शरीर, चित्रणा रहै एक क्षण धीर ॥ १४८॥
सुन्दर जोग नहीं बिंबहार, वायसगरैं क्यों सोहै दारु।
रूप नरेष कला नव धरे, वाउ वधूलौ घर-घर फिरै॥१४९॥
राउ महिन्द्र दोष पुन नहीं, लिखौ लिलार होई पुन सही।
अधिक चतुर नर होय सुजान, करम गले थे होई अंजान ॥ १५०॥

सुनी पवन तब कैसी बान, कोप्यौ पवन यसी ज्योंगात।
अधिक रोष काया प्रजली, मानौं घृत वैसादरु मिली ॥ १५१॥
कहै पवन कै कैसी हनौ, मो अजुगतो बोलो घनौं।
विनु अपराधै निंदै कोई, ताकौं मारत पाप न होई॥१५२॥
बैठी सास सुनै सुन्दरी, निंदा दोस कहो वे बुरी।
नहि धरनी नहि केसी वास, होई दुष्टनी करौ विनास॥ १५३॥
धनुष बान कर लयौ उबाई, खैंचौ अधिक कान लौंबाई।
देख्यौ मित्र गहौ तसु हाथ, जुगतौ नही तुम्हारो नाथ॥१५४॥
बोलौ मित्र सुनौं कुंवार, मारे त्रिया दोय कुल गार।
बडौ कलंक अकीरत होय, तानैं त्रिया न मारै कोई॥ १५५॥
यो अपराध सुन्दरी नाहिं, अपजश और सुकेसी आहि।
होय भलौ क्षिमा करे है, नीच जात के अवगुन सहे॥ १५६॥
सुख कौं घर कर गये कुँवारा, ताकौं फिर दुख भयौ अपार।
उपजै पाप दुःख अति होई, को पर घर जाय नहिं कोई॥१५७॥
बैठे दोई मित्र की वान, गये नगरपुर भेद न थान।
पवनकुमार क्रोध मन भयौ, सैना साहन साथ कै लयौ॥१५८॥
नागरमांहि दृगयौं तक्षना, भयौ निशान घाउ रन तना।
सिंघा माद निशान घुमाई, भेरी वाजित्र बधाई॥१५९॥
पहरे सुभट सनाह संजोग, नगर गाउ के देखे लोग।
ऊपराऊपरी करै विचार, आयौ नगरी कौंन जुझार॥१६०॥
एकैं कहै यहु लंका धनी, साहु नसैंन सुदी सै घनी।
पवनंजै कहुं सुंदरी दई, सुनी बात याकौं रीष भई ॥१६१॥
एक कहै झूठौ आलाप, लंकाधनी न आवै आप।
इन्द्रजीत तसु बडौ कुँवारू, तिहि बैठे वो आई नगर के द्वार॥ १६२॥

एकै सांचौ बोलै आई, पहचौ पुत्र प्रहलाद को बाई।
जूह्ल बात मत मानौं एह, मैंहु पचानौं सुन्दर देह॥१६३॥
राय महेन्द्र सुनी यह बात, धुनियौ सीस पसीज्यौं गात।
पवनकुमार किम आयौ नहीं हम तेतौ कछू चूकन परी॥१६४॥
साथ कुटुम्ब लियौ सज्जना, जाई पहुँचे नगरपुट भेदना।
दोई समदी भेटे राई, बैठे सिंघासन एकइ ठाई॥१६५॥
औसर पाय कहै प्रहलाद, हमने कहा भयौ उदमाद।
हम शरीर से ऊपनी, अगम बात कहिये आपनी॥१६६॥
मनैं महेन्द्र सुनौं भूपती, सावधान हो एकइ चिती।
पुत्र तुमारौ पवनकुमार, बैठा राई नगर के द्वार॥१६७॥
साहन वाहन अधिक विस्तार, मारौं गाउ करौ गड छार।
कहौ राइ हम काहौ दोस, पवनकुमार किया अति रोष॥१६८॥
सुनी बात पुटभेदन धनी, मन में अत लज्जा ऊपनी।
पहुंचौ कुवर तुमारे थान, मैं भेद न जानो तुमरी आन॥१६९॥
दोई राई भए असबार, गये जहां हैं वाईकुमार।
राय महेन्द्र जब दीनों हाथ, पवंनजै गह लीनौ है बाथ॥१७०॥
छांडो रोस पड तिह थान, बहुत सुसुर की राखी कान।
नगर पास सबन उत्तम थान, दयौ राई प्रहलाद से लान॥१७१॥
लगन दिवस कौ आयौ काल, तोरन मंडप रचे विशाल।
चितारे पंच वर्ण के रङ्ग,सोहै धुजा बहुत उत्तङ्ग॥१७२॥
अंगुर छानवै वेदी रची, पंच वर्ण रतनन कर खची।
सुवरन कलसा रचे चहुं पास, उत्तम हरिये रोपे वांस॥१७३॥
आम पत्र की बांधी माल, क्षाये उज्वल वस्त्र विशाल।
मंडप मांय विप्र आइयौ, वेदचार ही तहां उच्चरियौ॥१७४॥

पाव पसारन बैठे साष, भयौ विवाह अगन दे साख।
राज महेन्द्र उठे तिह वार, हाथ चोखे के आचार॥१७५॥
पवन हाथ पानी जब लयौ, घोरे हाथी कंचन दियौ।
गांव देश नगर पट्टना, दिये वस्तर आभरन सुध नां॥१७६॥
साजन लोग मिले तिहि यान जथाजोग दीनों तहां दान।
मास एक तहां रही बरात्, सब दल सहित पहुंचे कुसलात॥१७७॥
पवनंजै मन भरौ गुमांन, सुन्दरी कौं दियो निरंजन थांन।
बहुतक निद्रा दासी करी, तातैं बाई तजी सुन्दरी॥१७८॥
साथ रहै मधुःमाला सखी, सुनै मन्दिर निवसै दुःखी।
भई दुहागिन करिय विलाप, पूर्व उदैको आयौ पाप॥१७९॥
माथौ धुन लेह उस्वास, मैन फिरै ज्यौं भादौं मास।
कंत वियोग बहुत दुःख भारी, इह विध काल गमें सुन्दरी॥१८०॥

वस्तुबन्ध

बेचर सब वन में गये, राउ प्रहलाद, पवन जैसे सुपुत्र जांनौं।
दूजो राव महीन्द्र भीत, पहुंचे सुन्दर व्याह वषांनौं॥१८१॥
विहके अक्षर सिर चढे, भयौ विवाह संजोग।
पूरव पाप आयौ उदय, ताते भयौ विजोग॥१८२॥

॥ चोपाई ॥

इतनी कथा यहां ही रही, अब यह कथा लंका गडगई।
वसत है लंका गढ सु विशाला, करै राज दशमुख भूपाला॥१८३॥
तीन खंड धरती बहु रिद्ध, सदृस चौदा विद्या सिउ।
कुम्भकरन विभीक्षन भ्रात, दुरजन भूप कौं करै निपात॥१८४॥

वीरन कोई धीर जु धरै, भूचर खेचर सेवा करै।
दलबल साहन अति अभिमान, राज करै धरनेन्द्र समान॥१८५॥
नगरी एक अति सुन्दर बनी, राजा वरुन तासु कौं धनी।
रावन तनी न मानै आंत, सेना अधिक धरे अभ मानु॥१८६॥
तेज प्रताप वंत ज्यौं सूर, दुरजन राई करै चकचूर।
बात विचार गर्व अत भनौं, सुभटन कोई तासम गनौं॥१८७॥
रावन मन मैं रचैं उपाव, पढ्यो दूत वरनपै जाउ।
कहियौ ऐसी सोभा आऊ, नातर देस छोड कैं जाई॥१८८॥
नाम सुनी कर चलियौ दूत, बठन राइपै गयौ तुरन्त।
राक्षस वचन सुनहु नरेस, सेवा करै भोग बहु देस ॥१८९॥
रावण तीन खण्ड कौ धनी, अर्धचक्र तसु संपत धनी।
भूचर षेचर मानैं आंन, स्वर्ग समान लंकाकौ थांन॥१९०॥
वेगौ चल रावन की सेव, कौ तुम देस छोडियौ एहु।
बलौ यासन ही सेवा करौ, तौ तुम जन के मुख में परौ॥१९१॥
दूत वचन निवरुन पर जल्यौ, मानौ वैसां दुर घृत परौ।
कौंरावनु कौलंका ग्राम, अर्ध चक्र मैं सुनौं न कांन॥१९२॥
चक्रवर्त दूत वसै कुम्हार, भांडे बैचे नगर मझार।
नगरीमांह भील जे फिरै, दानै घूंरे वीनत फिरै॥१९३॥
घर ही गख करै नर कोई, ताकौं क्षत्रीधर मुन होई।
जोतौ पैदल पांरिष जांम, आब हुगे कीजे संग्राम॥१९४॥
लालच बूढौ को दे व्याह, लालच भूम कहौ क्यों षाई।
कर हुए घठि छत्री रीत, भाव बिना क्यों होई प्रीत॥१९५॥
सुनी बात फिर चलीयौ द्वत, पहूंचो रावन पास तुरंत।
वरुन राई जो उत्तर दियौ, ते सब दसमुख सौं वीनयौ॥१९६॥

फिरै क्षत्र अत महा अडोल, राखै नाही तुमरौ बोल।
गर्भवंत अत उत्तर भनै, तुमकौं तो वो अनसम गनै॥१९७॥
सुनी बात कोपियौ, मानौं अगनि मांह घृत दयौ।
दल बल साहन सेना घनी, बेटी नाई पुंडरीकनी॥१९८॥
पायौ भेद वरुन भूपती, संका कछु न मानी रती।
सेवक लहुर वडे बुलाई, दीनौं मान दाउ तब ताई॥१९९॥
दल बलसाहनु सेवे ले चढ़ौं, वेग जाइ दस मुखसौं भिडौ।
दियौ तांबूल मनही किल कांत, जैसे मदमाते गज दांत॥२००॥
राक्षस सेनाकौं सौ जुरै, घाले घाउ सत्रुओ परै।
जानैं बुध कला परचंड, ऐसे घाव करे सतखंड॥२०१॥
रावन तनौं बहुत दल हनौं, कायर सुभट न कोई गुनौं।
बांध लयौ खरदूषन राउ, पहूंचे सुभट वरुन के ठांव॥२०२॥
भयौ सोगु कंप्यौ दस मुख, मानौं अगन में दीनौं वृक्ष।
तेज्यौ तमोल अंनुरु अरु नीर, चिंता व्यापी अघक शरीर॥२०३॥
मंत्री बोले दस मुख सुनौं, जे सारे कारज आपनौ।
लंका जाई सपन सब लौटि, आई करौ पुन जुध वहोट॥२०४॥
सुनी सीख जब मंत्री तनी, बहुर गयौ लंका आपनी।
सेवक जेते हते आपना, दिये लिखे चलयौ तक्षना॥२०५॥
दूत एक पुट भेदन गयौ, प्रहलाद हाथ लिखौ ले दयौ।
वाचौ लिखो विनय अतघनौ, आबहु दल लै साहनु आपनौं॥२०६॥
वाचौ लिखौ भयौ अहलाद, ताप्रति गमन करै पहलाद।
वजी भेरी अरू नांद निसान, हाथी घोरे परे पलान॥१०७॥
पवनकुमार भेद पाइयौ, औसर पाय पिता ढिग गयौ।
हाथ जोर जपै लसु बात, विनती सुनहु तुमारे तात॥२०८॥

स्वामी हम पर करहु पसाउ, मेरी वाद समुख की जाउ।
देखौ लंका लोग दुथान, देखो वरुन धरै अभिमान ॥२०९॥
राजा सुनौं पुत्र परसाद, मन मैं भयौ अधिक अहलाद।
सुनौं कुवार हमारी बात, तुम संग्रामु न जानौ घात॥२१०॥
बाजौ सिधू नाद निसान, सुनत कान तजहु पिरान।
नींद भूख तौ जाई न सही, ठाई बालक तौ जुगतो नहीं॥२११ ॥
वचन पिता के मन मैं धारि, पवनंजै बोलयौ विचार।
बालक सर्प्प जोडसै तुरंत, जाके खाये तंतु मत॥२१२॥
बालक सिंध होय अतिसूर, देती घंटा करैं चकचूर।
अष्टापदकौं होयजु वाल, अठ हस्ती सहित सिंघकौ काल॥२१३॥
जो बालक चिंतातुर होय, तौ हारै जुउ न जीतै कोई।
क्षत्रि पुत्र न बालक होई, अह हसिके पिता शीख मुझ देउ ॥२२४॥
राजा सुनत अधिक सुख भयौ, पुत्र हाथ लै वीरादयौ।
वचन पुत्र तुमरे परवान, चलौ सेना लै लंका थान॥२१५॥
पिता तामोल पाई उपदेश, चलियौ दल बल शुभरु असेस।
कर अस्नांन पूजे जिनदेव, नमस्कार कर गुरुकी सेव॥२१६॥
वारेव बड़े सवै पखार, साथ बैठे तिन कियौ अहारु।
लियौ तांबूल वस्त्र आभर्न, सस्त्र सबह सुनानामर्ण॥२१७॥
भेट कुटुम्ब सर्व परवार, चाले लंकाकौं वायुकुमार।
निकरै पौर धार बाहरे, देखी ठाडी द्वार सुन्दरी॥२१८॥
विनु आभरन सुमेले चीर, किरै रैंन ज्यों भादौ नीर।
पौर दुवार ठाडी सुन्दरी, मानौं चित्र चतेरी करी॥२१९॥
भयौ कोप अति पवन कुमार, देखौ ढीट तनौं व्याहार।
मन शंका नहीं मुझ तनी, लाज बेच बाई पापनी॥२२०॥

गमन काल ठाडी हो रही, मुख देखन तौ जुगतौं नहीं।
हिये कुटिल अत रौवे खरी, दुखसो पापन मो हट वरी॥२२१॥
सुन्दर सुनो कंतकी बात, हरखी चित्त हुलासी गात।
हाथ जोर सामैं विहसंत, वेग गमन कर आवहुं कंत॥२२२॥
सुनी बात चालियौ कुमार, भले सगुन भासे तिहवार।
गावता मिली नार सामने ही, थारी हाथ दूव अरु दही॥२२३॥
वायौं सिंहद हारे घनौं, पावै सुख पति लंका तनौं।
वाई देवी करह फिकार, आवै कुसल मिलै खार॥२२४॥
देख सगुन वाजे निसान, जोजन दोपर परौ मिलान।
पानी उत्तम गहिर गंभीर, तंबू तने सरोवर तीर॥२२५॥
दिन गत गयौ अथयौ भानु, पक्षी सवद करे असमान।
मित्र सहित वन जै राई, मंगर ऊपर बैठे जाय॥२२६॥
देखे पंछी सरवर तीर, करे सवद अनगहर गंभीर।
दसौं दिसा मुख कोलौ भयौ, चकही चकहां अंतर भयौ॥२२७॥
पिय वियोग चकही दुःख करै, ऊंची उठ भौमे गिर परै।
क्षिनइ उठै क्षिनक विललाह, क्षिन क्षिन पंख पसरे राइ॥२२८॥
देखौ पवन पक्षी व्यौहार, कहौ मित्र यौ कौन विचार।
धीर न धरै पुकारे घनी, कौह बात तुम पक्षी तनी॥२२९॥
कहौ मित्र पवनंजय सुनौं, कन्त विक्षोह करे दुःख घनौं।
दिवस मिलवे कौ जोग, रात होत गई न परै वियोग॥२३०॥
पवनंजै सुन पक्षी बात, काम बाण तसु वेधौ गात।
चिन्ता उपजी बहुत शरीर, रहै न चित्त एक क्षीण धीर॥२३१॥
पवनंजै बोले तक्षना, सुनियौ मित्र वचन हम तना।
चकही एकहि रात वियोग, करे विलाप अधिक दुःख सोग॥२३२॥

कहौ अंजनी कित जीवित छोड़े भए वरस बाईस।
अत अपराध भयौ है मोह, हम समान नह मूरख होइ॥२३३॥
मैं पापी मति हानि बुरी, विनु अपराध तजी सुन्दरी ।
विनु विचार जौ कारजु करै, ताकौ कामुन एकऊ सरै॥२३४॥
तजी त्रिया मेरी मत दई, बुध सबै हर ले गयौ दई।
ताकौ भयौ बड़ौ सन्देह, अगन काठ सम दाहै देह॥२३५॥
मित्र काम पुहुत मत होह, सुन्दर वेग मिल बहु मोह।
मित्र कौ करे रिन निस्वास, मित्र बिना नवि पूरे आस॥२३६॥
बहुत आपदा आवै जबै, मित्र परीक्षा पावै तबै।
काया दुःख करै जब कोई, तबै मित्र तेरहा होई॥२३७॥
दोई दल मिल होय संग्रास, सेवक कर्म पायौ हम तास।
जौ होई दलिद्र घरा अत घनौं, लहै भेद तब ही त्रय तनौं ॥२३८॥
मैं तुम आगे छोड़ी लाज, सुन्दर वेग दिखा बहु आज।
जै हैं प्रान निकस हम तनैं, तब तोउहि दुःख लासै घनैं॥२३९॥
रावन वरुन दोउ दल जुरे, कह विचार दई घर परे।
दुहूंधां क्षत्री जु रहै झूठ, किह करवट बैठे धो उठ॥२४०॥
सुनी बात बोलै हस मितु, राखौ पवन धीर धर चित्त।
धीर न धरै अधिक अकुलाय, ताकौं कारज एक न थाय॥२४१॥
धीरे क्षत्री पावै राज, धीरे खेती निपजै नाज।
लगावै वृक्ष धीरे फल खाई, धीरे मुनिवर मुक्ति जाई॥२४२॥
धीरे मन में उपजै बुधि, धीरे होय काज सब सिद्ध।
धीरे वस्तु मिलै सब सार, धीर चित्त कर रहौ कुंवार॥२४३॥
पहलौ पहर निसा जब गई, निद्रावस सब सेना भई।
मित्र बाई तब मन्त्रण नयौ, सेवक एकु तबै जानियौ॥२४४॥

कहै पवन सेवक सुन बात, तबै बंक कर आउ जात।
नीके सेना राखियौ राति, वंद देव आउ परभात।।२४५।।
सेवक कहै सुनहु हो वाई, वचन लियौ हम सिरह बड़ाई।
जबलौं तुम कर आवहु जान, तब लग दल राखौं कुसरात।।२४६।।
दुहूं बैठ पौ रचवी वानु तक्षन गये अंजनी थांन।
उतर विमान धारे ठाडौ कियौ, तब सुन्दरकौं चमरौ हियौ।। २४७।।
इतनी रात आयो इह ठाम, कवनु पुरिख कहि आपनौं नाम।
पहलौ असुभ कर्म तौ भंलौ, ता आगे कैसे छूटनौ।।२४८।।
थरहर थरहर कप्यौ शरीर, सुन्दर चित्त रहै नहीं धीर।
उठ देखौं मधुमाला माई, कौंन लोग आयौ इह थाई।।२४९।।
ठाडौ बाहर बोलै मित्त, नाकहिर स्वामी निसंका चित्त।
असुभ तुमारौ गयौ समाई, कंत तुमारौ आयौ बाई।।२५०।।
सुहरिके मन भयौ संदेह, सपनौं गयौ परतक्ष वेहु।
जहां अंजनी पौढी थान, तहां पहुंचे पवन सुजान ।।२५१।।
देखे कुंवर चिंता गह गई, छौडौ आसन ठाडी भई।
कर गह त्रिया पवन भूपती, बैठे ईक पलका दंपती।।२५२।।
बोले पवन सुन्दरी सुनौं, हम अपराध भयौ है घनौं।
मैं पापी मत हीनौं भयौ, विन अपराध तुह्मो दुख दयौ।। २५३।।
सीलवंत कुलवंती नारि, तुमसी त्रिया नाहीं संसार।
हमसे चूक वनी है परी, क्षमा करौ हमसौ अंजनी।।२५४।।
कंत तवै जब सुनियौ वैन, हाथ जोर बोली भर नैन।
तुम कछु दोस नहीं है रेख, पूरब करम भुंजै नर देव।।२५५।।
दोस न कोऊ काहू देई, जंसे ववै तैसे फल लेई।
जौ लगु असुभ करम तौ कोई, तबलौ दुःख दिखायौ मोई।।२५६।।

अब तुम अर आए होनेहु, हम ऊपर तुम कीयौ सनेहु।
अबलौं हती अंजनी सही, अब तुम दरस निरंजन भई॥२५७॥
हावभाव अत कीनो सती, कीनौं भोग तहां दंपती।
जैसो पुरुष त्रिया योहार, तैसो सवै भयो आचार॥२५८॥
पीछलौ पहर जब निसिकौ भयौ, तेवै गंधनु पवनपर ठयौ।
मित्र हतौ सो लयौ बुलाई, रचौ विवनु चलौ दल ठाई॥२५९॥
सुन्दरी कहै कंत सुन एहु, तुम तो चले लंकपत एहु।
आगे गुप्त कियौ संभोग, हमकौं हे रितु वेला जोग॥२६०॥
हमकौं रहौ गर्भ जो ठाउ, तब होई तहां कहां कराउ।
दुरजन लोग न जानौं भेद, अपजस कहै गहै बहु खेद॥२६१॥
सास ससुर सबै परवाह, हम सिर देहे कलंक कुवार।
निंदा करै लोग सब कोई, कहा सीख पिय हमको होई॥२६२॥
सुनै वचन सुन्दर के बाई, तब तिह ऊत्तर दियौ बताई।
सुन्दरी वचन तुम्हारे सही, बात कहत न जुगत्यौ तही॥२६३॥
जानौं लोग पिता अरु माई, हांसी होय लंकापति जाई।
जग मैं अपजस मेरो होई, तातैं प्रगट करै ना मोई॥२६४॥
अधिक अनूप सुही राजरी, आप दई करकी मुन्दरी।
सास ससुर जब करैं रार, तब यह मुंदरी दीजो काड॥२६५॥

वस्तुबंध

गुप्त आयौ नंदन प्रहलाद, मित्र सहित तहां गमन कियौ।
सुन्दरिसो संतोष कर, उत्तम रचौ विमान।
मित्र सहित सो बैठकर, पहुंचे सेना थान॥२६६॥

चौपाई

पवनंजय लंकाकौं गयौ, गर्भ अघान सुन्दरकै भयौ।
बडियौ गरभ मास दो चार, फूल बहुत मन मई कुमार॥२६७॥
हाथ पांव मुख चले पसेव, काया पीतवरन तसु कीव।
मास गर्भज नव पूरौ भयौ, केतुमती सासु दीखियो॥२६८॥
खुम्यौं सीस मीचे दोइ नैंन, सुन्दर आगैं भासे वैन।
कहा पापनी कियौ उपाय, राख्यौ गरभ कबनसे होंऊं ॥२६९॥
सबै कुटुम्ब बोलै तक्षना, देखौ गरभ कव नेती तनां।
कियौ कुकर्म गर्भ विवहारु, जानौं नहीं लियौको जारु॥२७०।
मेरौ कुल उजला उतंग, लागी कालमा कियौ अंग।
कीरत अधककंतु मुझ ननी, ताकी हो न करी पापनी॥२७१॥
कियो विनोद अन सासु तनौं, सासु वचन कहौ तै सुनौं।
गुपत रूप आईयो कुवार, उपजौ तबते गुरभु आधार॥२७२॥
तहां समैं भई रितु जोग, रहो गरभ कीनौं संभोग।
पक्षम दिस जौऊ माना, तोउ वन झूठौ करहु वखांन॥२७३॥
जो वचन हमारे नहीं विश्वासु, तौ मधुमालह पूछौं सासु।
पवन हाथ की हीराजरी, निशानी देख हु मुन्दरी॥२७४॥
केतुमती बोली सुन बहू, अति प्रिय चतुम जानो सहु।
विद्या मय आन मूदरी, कोच विधी भेजोनदु घरी॥२७५॥
पुरुष पराये सेबनहारि, वह ऊतरकर जाने नार।
दीसे बालक थारे दिनौं, यह कुटिलाई सीखी वहां॥२७६॥
उठ उठ वेग निकस तुम जाहु, मेरे हिये भरौ विसहाहु।
नगर लोग जो जानै कोई, अपजस सु बहुत बाजहै तोहि॥२७७ ॥
चाकरु एक दियौ तिह साय, काडी सुन्दर पकरैं हाथ।
ढील न करौ वेग ले जाहु, नगर महेन्द्र दिखावहु वाहि॥२७८ ॥

दोहा

लिखे विधात लेख ना कौं मेटत समरथ्य।
कर्म तनौं फल जेवि नर, ते भोगते अवरथ ॥२७९॥
दुःख सुख अरु जामन मरन, जिहवे राजिह होई।
धरी महूरत एक क्षिन, राखत सबके कोई॥२८०॥

चौपाई

निकरी सुन्दर करै विलाप, उदैको वधौ आयौ पापु।
कै मैं दयौ कुपात्रह दान, कैसे मुन जिन गारौं मान॥२८१॥
कैम जिनवर घर मुन कियौ, कै पूरव मिथ्यातम सेइयौ।
कै कुदान दीने मैं दान, कै मैं भोजन कीनौं रात॥२८२॥
कै मैं जीव हनै बहु भीर, कै अनुछानौं अचयौ नीर।
कै अखाद वस्तु आचरी, कै मैं परकी निन्दा करी॥२८३॥
कै मैं पर पुरुष करी सेबना, कै कन्द मूल भखयौ घना।
कै मैं नगरवारियो दाह, पूरव पाप भए अब आह॥२८४॥
अहो विधाता तौ मत चली, गरभवास दीका हन गली।
तुम तौ विधना बहुति अजान, वारे क्यौं नहीं गए पिरान॥२८५॥
अहो मधुमाला करहु उपाई, हो पुत्री तू मेरी माई।
पूरौ गरम भयौ व्यौहार, जीवौ कहां कवन आधार॥२८६॥
सुने वचन बोली मधुमाल, मन मति दुःख परहु मो बाल।
सुसुर सासु पिय दुःख देहानौं, सरनाई घर माता तनौं॥२८७॥
कष्ट कष्ट कर पहुंची तहां, राउ महेन्द्र थान है जहां।
विलख वदनसों सुन्दर गई, सिघ द्वार ठाडी तब भई॥२८८॥
द्वारपाल दई सुबरन साट, नामुर तासु कौसिला कचाट।
जहां हैं सुमत ताकौं थांन, सुन्दरकौ नहीं देहि तना जान ॥२८९॥

मधुमाला बोली सुन तात, तासौं कहौं पाछली बात।
पवनंजय लंकाकौं गयौ, गुपत पनैं मन्दिर आइयौ॥२९०॥
कुंवर जोग दीनों रतिदान, उपजौ तहां गरभ आधान।
जानै सबै ससुर अरु सासु, तब सुन्दर कौ दिया निवास॥२९१॥
जै आचार या दो दुःख लहौ, ते सब द्वारपाल से सो कहो।
यो दिबहारू सुन्दरी की जान, वेग जाह राजहिं गुदरान ॥ २९२॥
सुनौं वचन मधुबाला तनौं, सिला कचाट गयो न क्षने।
कर जुहार राजासौ कहौ, सुन्दर गवन तुम धर भयौ॥२९३॥
हम दीनी आडी जहां क्षरी, सोह द्वार राखी कर खरी।
अब जैसी आज्ञा तुमरी होय, तैसो उत्तर दीजे मोह॥२९४॥
सुनत बात राजह सुखु भयौ, मन में अत आनंद मानियौ।
नगर उछाह दुजावि साल, बांधौ तोरन वंदन माल॥२९५॥
द्वारपाल बोले सुन राउ, पीछे सुन्दर कियौ उपाय।
जैसी जुगत गर्भ युत रहौ, तैसी विध राजासो कहै ॥२९६॥
सुनी बात भूपत पर जलौ, मानौं वैसां दुरघृत मिलौ।
अति विचार कियौ अंजनी, बात जाहु काडौ पापनी॥२९७॥
चन्दजोत ज्यों कदम हमारौ, राहु आमलौं कियौ पसारो।
भयौ कु कर्म बुरौ आचार, काड हुवे गन लाबहु वार॥२९८॥
नगर लोग जो सुनहै कोई, तो अपजस सुन है सब कोई॥२९९॥
तौ अप जस बडे व्रज सिरमोह, कियौ कुकर्म संग्रहौं पाप
ना वा बेटी नाहो बाप॥३००॥
सुनी बात मस्तक अत धुनियौ, सींचे नैंन कान कर दियौं।
मन्त्री सुमत कहै सुन राउ, ऐसौं क्यों तुम कहौ उपाय॥३०१॥
उत्तम सील सती अंजनी, उदय तुमारे जौं उपनी।
करौ विचार अपनौं चित्त, ईसौ जुगत न तुम भूपत॥३०२॥

मन्त्री वचन लीयो विश्रांम, बहुर कोपकर बोले तांम।
देस नगर कौ करौ निकासु, वेगे जाहु देह वनवासु॥३०३॥
विलख वदन बोली अंजनी, पाले हुती जैसी पदमनी।
ऊंची नीची बोले हडसास, नैन झीरै ज्यौं भादौं मास॥३०४॥

दोहा

जादिन आवै आपदा, ता दिन मित्र ना कोई।
माता पिता कुंटव सब, ते सुन वैरी होइ॥
कंत सास सुसुरौ पिता, स्वदल अधक अनूप।
सो सुन्दरी नकेसियौ, यौ संसार स्वरूप॥३०॥

चौपाई

निकरी सुन्दर करै विलाप, जुगतौ तोकौ यौ नहीं वाय।
आयौ सरन ना काडै कोई, यह तौ पुत्री पधर मुन होई॥३०६॥
बड़ी दुष्टनी केतुमती सासु, काहेकाहे होतैं करी मिरास।
मैं अपराध कियौ नहीं कोय, अन्नाहक दुःख दीनौं मोह॥३०७॥
अहो सुसुर राजा प्रहलाद, काहे मोपर कियौ विषाद।
झूठ सांचकौं न्याउ न कियौ, बिन अपराध निकारौ दियौ॥३०८॥
अहो कन्त तुमहरी मतबली, एकई बात न करिगे भली।
मात पिता कौ भेद किन दयौ, आये गुपत मोह दुःख दियौ॥३०९॥
रुदन करै झूरे सुन्दरी, पंथ एक दुग जाई न भरी।
गरभ भार अत पीडा मई, पाउन षुमैं अधक दुःख लई॥३१०॥
क्षिनक इक चलै क्षिनकमौ परै, करै विलाप बहुत दुःख भरै।
अधिक आपदा उपजी ताम, पग पग बैठे लेह विश्राम॥३११॥
मधुमाला आलंबन देह, कर गह कांधे हाथ सु देह।
एक पंथ अरु दूजे दुःख, क्षिन एक सुन्दर लहै न सुख॥३१२॥

देखे कुंवर आपदा थान, दिन सब गयौ अथयौ भान।
अंधकार वस अत दुःख लहौ, पीरा परकी देखन सहौ॥३१३॥
दसौं दिसा सब कोमल भई, नैन पंथ दीसे कहुं नहीं।
छोड़ पंथ पेड़ दस ताम, वृक्ष तरै लीनौं विश्राम॥३१४॥
मधुमाला तरु देख असोक, टोरे पत्र सांथरे जोग।
डारी भूम विक्षाए पान, कियौ कुंवर कौ साथरौ थान॥३१५॥
सुन्दर सोगु तज्यौं तिहवार, जपियौ मंत्र सिधनकार।
मन में राख जिनेश्वर नाम, पौढ़ी करि लियौ विश्राम॥३१६॥
ऊंगौ भान निसा जब गई, पूरव दिसा जु पिपरी भई।
दिनकर तेजु जाइ नहीं सयौ, अंधकारकौ परलौ भयौ॥३१७॥
उठ दो कर जोर करै जयकार, महामंत्र जपिनौ नौवार।
कर गह लयौ सखी मधुमाल, वन में चली अंजनी बाल॥३१८॥
वन अब विषम महा भौभीत, सावज सिंघ वसे विपरीत।
चीते रीछ स्यार सुवरी, ता वन मैं पौंची सुन्दरी॥३१९॥
चलत पय वन आधे गई, मुनिवर बैठत तहां दिन गई।
फटिक सिला बैठे मनिराय, दिये ध्यान चेतन चित्त लाई॥३२०॥
मन मैं पायौ अधिक हुलास, गई वेग मुनिवर के पास।
देखे मुनवर गहर गंभीर, महा अडोल मेरु ज्यों धीर॥३२१॥
दीनी दोनौं तीन प्रदक्षना, गुननग्राम भासे मुनितना।
मस्तक जोर दिये दोइ हाथ, भाव सुध वंद मुन नाथ॥३२२॥
जोग जुगत जब पूरी भई, मुनिवर धर्मवृद्धि ति सुन्दरी।
समाधान बूझै बहू वार, जैसो श्रावग जाति व्योहार॥३२३॥
अति अहलाद भयौ अंजनी, मेघ उमड़े ज्यों मोरनी।
सीस भूम धर जोरे हाथ, दस विध धर्म कहौ मुनिनाथ ॥३२४॥

दसवि धरम मुनीसुर कहौ, सुन्दरी सुनत बहुत सुख लहौ।
मुनवर तनौं कियौ अत मान, बाईसी सु पैठी तिस थान॥ ३२५॥
मधुमाला जब औसर पाय, कर सिरसो वरदे मुन पाई।
स्वामी कुंवर भयौ दुःख घनौं, जबते गरभ आइ ऊपनौं ॥३२६॥
कै यह पापी कै यहु मित्र, कै यह मुन कै यहु सत्रु।
कौंन जीउ यह उपजौ आई, कहिये ज्यौं सक तीनाई ॥३२७॥
सुनौं वचन मधुमाला तनौं, मुनवरनाथ भने तक्षनौं।
चित्त सुध कर क्षाडहु खेद, पुत्री सुनौं गरभकौ भेद॥३२८॥
जंबूद्वीप प्रगट ले लोई, भरतक्षेत्र जानह सब कोई।
मंदिरपुर अति उत्तम ठाम, वसै तहां नंदत सु नाम ॥३२९॥
दंपती धरनी सु विसाल, जायौ पुत्र महासुकमाल।
रूपकलागुन अधक अपार, पाप पुन्य होई ही भंडार॥३३०॥
एक दिवस वनक्रीडा गयौ, चारन जुगल तहां दीखियौ।
पहुंचे मनुवर पार कुवार, वंदे मुनवर जंग अधार॥३३१॥
सुनौं धरम उपजौ संतोष, श्रावाक कौ व्रत लियौ निरदोस।
नमस्कार कर वारंवार, थान आपनौं गयौ कुंवार॥३३२॥
नित प्रति देह सु पात्र हि दान, जिनवर धर्म करै गुरु मान।
तजौ राज मनसूरी तब आई, भयौ देव सो स्वर्ग कौ राई॥३३३॥
रहै स्वर्ग सुख भुजै घनौ, जंबूद्वीप आई ऊपनौं।
मिरग नगर सोहै अति ठांम, भयौ राउ हरचंद जहां नाम॥३३४॥
दानपुत्र तहां कीनौं घनौं, सुध चित्त राखौ आपनौं।
आव तनौं तसु आयौ अंत, भयौ जाय सो देव महंत ॥३३५॥
बहु सुख भुंजे पूरी आठ, उपजौ नगर अयन सुभ ठाउ।
नाम सुकंठ वसे भूपाल, धरनी कनकोदरी विसाल॥३३६॥

सिंह बहुत उपजौं आनंद, ख्मकला सज पूजौ चंद।
देव गुरुकी सेवा करै, जैन धर्म कौं निहचौ धरै॥३३७॥
एक दिवस सो वन में गयौं, विमलनाथ स्वामी भेटियौ।
दियौ राज निज कुंवर बुलाइ, दीक्षा लीना मन वचन काय॥३३८॥
पालौं संजम पूरी आउ, उपजौ सुरग सातयें जाइ।
भयौ देव सुख भुंजै घनौं, भयौ गरभ सुन्दरी ऊपनौं ॥३३९॥
उत्तम जीउ पुंन्न की खांन, तप कर ईही देह निरवान।
गर्भे दोसु नहीं है सुता, दोस न सुसर सास अरु पिता॥३४०॥
पूरव पाप उपायौ घनौ, असुन्दर भुंजह आपनौं।
भनै जती मधुमाला सुनौं, वयौ जैसौ नरु तैसौ नुनै॥३४१॥
सुनौं वचन मुनि के मतुलाई, भयो हरख अति अगनि समाई।
हाथ जोरि प्रति क्षोमे बात, पूरव कहै सुन्दरी बात॥३४२॥
मुनवर बोले सुनहु कुंवार,कहौ कथा सब मन अवधार।
जैसी जुगत पाप ऊपनौं, सो सब कहौ कानहै सुनौं॥३४३॥
पूरब जनम राजघर त्रिया, कानकोदरी नाम तसु दिया।
इती रानी है है देतती, जिनवर पूजा करैं निज्ज प्रति ॥३४४॥
ग्रह गवाक्ष सोहै असमान, जिनवर बिंब रहै तिह थांन।
पूजा अष्ट प्रकारी करै, दान पुन सुव्रत आचरे ॥३४५॥
देखी प्रतमा कनकोदरी, कियौ कुकर्म वेग प्रतिहरी।
चक्रवावरी मानौं घनौं, मेलौ तहां बिंब जिन तनौं ॥३४६॥
अर्जका एक अहारको गई, लक्ष्मीमती के घर ठाडी भई।
बिंब तनौं दुःख लक्ष्मीमती, करै पुकार सोग अति सती ॥३४७॥
कहै अर्जका सुत तज खेद, प्रतमाको मैं पायो भेद।
साच वचन सब मेरे मान, तुमको बिंब दिखाऊं आन॥३४८॥

अर्जका के मन चिन्ता भई, कनकोदरी के मन्दिर गई।
रानी नमस्कार उठ कियौ, ऊँचौ आसन बैठक दियौ ॥३४९॥
कहै अर्जका रानी सुनौं, पीते असुभ परौ तो घनौं।
तीन लोक पूजै जिन देव, पुगतौ तुम नहीं भूसन एव॥३५०॥
जब तीर्थंकर जनम सु होई, इन्द्र सची सुर नाचें सोई।
मेरु सिखर लै पूजा करै, ते जिनन्द क्यों संकट धरै॥३५१॥
उत्तम कुल रानी ऊपनी, सब रानी निझ परख समनी।
ऐसौ मन में धरौ कुभाव, जिनवर वेग बिमलै आव॥३५२॥
दुष्ट भाव जिनवर पर रहै, नरक दुःख सो निहचै सहै।
भुंजै नहीं सुखको नाम, क्षिनइक सो नहीं पावै विश्राम॥३५३॥
सुनी बात तब अर्जका तनी, रानी तन मन भई कंपनी।
पहुंची वेग बावरी थान, आनै बिंब कियौ अनमान॥३५४॥
जिनकी पूजा हरख मन धरी, उत्तम क्षमा सोसी करी।
तजौ सुभाव सबै मन तनौं, सुद्ध भाव राख्यौ आपनौं॥३५५॥
ऐसी जुगत बहुत दिन जाय, तौ लग आई काल गत भाई।
मरन काल लीनौ संन्यास, जाय ऊपजी सुरग अवास॥३५६॥
उत्तम भई देव अंगना, मन वांछत सुख भुगतै घना।
पूरे आउ तहाथे भई, राउ महेन्द्र सुता अब भई॥३५७॥
बाईस घरी विंब जल रहौ, तातैं कन्त विक्षौहो भयो।
पूरव पाप किए मन बुरी, आयौ पाप उदै सुन्दरी॥३५८॥
ऐसो करम न कीजौ सोई, बाटे पाप अधिक दुःख होई।
जिनवर धरमकी निंदा करै, चारी गत संसारै परै॥३५९॥
अब पुत्री मन कौ तज सोगु, वेग कंत मिल है तुम जोग।
भुगतौ पुत्र तनौं सुख घनौं, मिलहै सकल कुटुम्ब तुम तनौ॥३६०॥

साध वचन भई धीर शरीर, त्रसा जाय ज्यौं पीवत नीर।
सोग सवै क्षोद्यौ तिह वार, अमृत मुनके वचन अहार॥३६१॥
नमस्कार कर आगैं चली, गुफा एक तहां देखी भली।
दीरघ बहु चौराई घनी, बसे तहां मधुमाला अंजनी॥३६२॥
टोरै वचन फल दासी लेई, भोजन जोग कुंवरिको देई।
धरम कथाकौं करै वखान, निवसे गुफा निरंजन थान॥३६३॥
रहतन भए दिवस दो चार, आयौ सिंह गुफ़ाके द्वार।
महा दुष्ट देखो विपरीत, संका चित्त भई भयभीत॥३६४॥
बिम्ब रमासुन्दर लै दई, दासी उठै अकासै गई।
गगन पंथ रोवै दुःख भरी, काहे विधाता ऐसी करी॥३६५॥
सुन्दर लाल पाल कर बड़ी, विधना जोग सिंघ मुख परी।
अधक विलाप करै अकुलाई, फिरै गगन मै रहै न ठाई॥३६६॥
रतनचूल वन निवसै देव, ता संग त्रिया तिह बूझो णेव।
कौन है स्वामी करै पुकार, ताकौ मोसो कहौ विचार॥३६७॥
रतनचूल त्रिय आगे कहै, अस्त्री दोई गुफामैं रहैं।
सुन्दर एक गुफा में धरी, दूजी गगन पंथ संचरी॥३६८॥
रोकौ सिंह गुफाकौ द्वार, ता करन यह करै पुकार।
गुफामांउ याकी वसमिनी, तासु विजौग चिंता अपनी॥३६९॥
सुनी बात देवी पियतनी, मन मैं तास दया पाउनी।
स्वामी जाय सिंह विडारौ, कुहूकौ दुःख स्वामी निरवारौ॥३७०॥
वचन प्रमान कियौ त्रिय तनौं, रतनचूल पहुंचौ तक्षनौ।
रूप धरौ अष्टापद वाल, देखे ताह सिंघकौ काल ॥३७१॥
जाय गुफा मुख ठाडौ भयौ, कर आडंबर आगैं गयौ।
मारौ सिंह उडाई छार। मुकतौ भयौ गुफाके द्वार॥३७२॥

सिंघ निवार देव घर गयौ, मधुमाला मन हरखत भयौ।
उतरी गगन गुफा में गई, भेटी कुंवर उछंगह लही ॥३७३॥
दासी भनै अंजनी सुनौं, पुन उदै आयौ तुम तनौं।
आयौ सिंघ करै मत बुरी, भयौ दूर सुरक्षा करी॥३७४॥
भली बात धर्म हित होई, भूत पिचास न पीड़ै कोई।
धर्म एक जग मैं आधार, धरम सहाई लहै सिव द्वार॥३७५॥
धरम सहाइ सर्प्प होय माल, धर्म सहाइ सिंघ होय स्यार।
दुख न सहै धर्म की साख, पुत्री धर्म एक मन राख॥३७६॥
धर्म कथा दोई मिल कहै, सुखसों गुफा निरंजन रहै।
मुनिवर की अति कीरत करै, वचन सुनेते निहचै धरै॥३७७॥
आधी रात काल जब गयौ, त्रिया सहित गंधर्व आइयौ।
भयौ ताहू मदी धुक्कार, अपक्षरा नांचै गुफाके द्वार॥३७८॥
टोटे तांनु मूर्छत हो गई, हाहा हूहू सब दुकरांन।
तनु फेरे ज्यौं चका कुमार, करे अखोर अधक सुधार॥३७९॥
बहुत गीत वाजित्र वखांन, गंधर्व आई रच्यौ तहां थांन।
पूजा पाई सुन्दरी तनां, गंधर्व थांन गई तक्षना॥३८०॥
सखी कहै जानौं सुन्दरी, या विभूति सब पुंन हि तनी।
आगैं नाचै सुर सुन्दरी, गंधर्व पूजा पाउतकी करी॥३८१॥
सुन्दर मनमें उपजौ भाव, जिनवर बिंब रचौ तिहि ठाव।
आठ भेदने वज वंचना, पूजै कुवरी वचन जिन तनां॥३८२॥
कोईक काल धरम सौ गयौ, पीडा गरभ कुंवर कौं भयौ।
सुभदिन जोग सुभ लगन नक्षत्र, कुवरि गरभते निकरौ पुत्र॥३८३॥
गुफा माहु अति भयौ उजास, मानौं रवि कीनौं परकास।
रूप कला गुन लहौ न पार, परतक्ष कामदेव औतार॥३८४॥

दिनकर कोट दिये तसु देह, सोलहकला, चन्द्रमुख ऐह।
तेज पुंज दीसै वर वीर, महां वज्रमय चरम शरीर॥३८५॥
सुन्दर देखकाल कौ देह, मन मैं भयौ विवाद सनेह।
घरै महौछे करनी घनैं, दई संजोग गुफा ऊपनै॥३८६॥
निरजन वन मैं रहि यौ आंन, आबत देखो एक विमान।
कैयक मित्र कैसे ऊह कोई, दई पुत्र कि न रक्षा होई ॥३८७॥
घने कष्ट पूजौ आधान, महां अरन्य जन्म कौ थान।
विधना संकट परे कुमार, किम या आगे होय उवार॥३८८॥
गगन पंथ औतरौ विमान, रहियौ थांक गुफा के थान।
मन में खेचर चिन्तै ताम, सत्रु मित्र कै जती जिन थान ॥३८९॥
गुफा माऊ देख्यौ उजास, मानौं सूरज किरन प्रकास।
मन में अति अचरज जु भयौ, उतर विमांन भूमिपर गयौ॥३९०॥
देखो कुंवर गुफा में वास, बल गुन लक्षण जानों वासु।
विद्याधर मन में यों कहै, वनदेवी या वनमें रहै ॥३९१॥
उतर गगनते ठाडो भयौ, त्रिया सहित गुफा में गयौ।
मधुमाला आवत देखियौ, आसन ऊंचने बैठक दियौ॥३९२॥
विद्याधर खोलो हे मात, कहौ आपनी हमसौ बात।
तुम हौ कौंन तुमारो ठांम, माता पिता कौंन तुम नाम ॥३९३॥
वन उद्यांन वसौं मैं भीत, साचज विकट वसे विपरीत।
एकाएकी तिनु आधार, रहौ गुफा में कौंन विवहार॥३९४॥
विद्याधर की सुनकैं बात, दासी बोली सुन हो तात।
पूजौ भेद सबै तुम भलौ, सो सब सुनौं कहौ पीछलौ ॥३९५॥
नगर महेन्द्र वसै सु विसाल, खेचर महेन्द्र तहां भूपाल।
हद वेग सोहै तसु त्रिया, नाम अंजनी ताकी धिया ॥३९६॥

पुट भेदन प्रहलाद नरिंद्र, त्रिया केतुमती घरा अनंद।
ताके पुत्तर पवनकुमार, अति सरूप अति लक्षन सार॥३९७॥
लंका चले पवन बरवीर, भयौ मिलांन सरोवर तीर।
देख्यौ चकहा चकही संग, कामबाम तव वेध्यौ अंग॥३९८॥
सेना साहन सब छोडियौ, गुपत कुंवरी के मंदिर गयौ।
भयौ संजोग दियौ रितु हांन, गये पवन फिर लंका थांन॥३९९॥
सुन्दरी जोग गर्भ तहां रहौ, भेद सास केतुमती लहौ।
दियौ कलंक पाप मत, बुरी हाथ गह के कढी सुन्दरी॥४००॥
सुन्दरी गई पिता के थांन, तहां युव काडी कर अपमान।
सुब व्योहार पाछलौ जांन, यातैं सुन्दरी गई पिता के थांन॥४०१॥
दासी तनी सुनी सब बात, भयौ कलेस पसीजौ गात।
खेचर कहैं पुत्री तुम सुनौं, सब विरततु कहौ आपनौं॥४०२॥
दीप हनूवा उत्तम थांन, भूपति तासु विचित्र सांन ज।
तासु त्रिया घर सुन्दर माल, प्रति सूरज है ताके बाल॥४०३॥
सुन्दर सुनत भयौं सखु घनौं, जब जान्यौ माया आपनौं।
उठकै वेग पसारे हाथ, कियौ रूहन भेरी भरवाथ॥४०४॥
सत बचन प्रति सूरत कहै, सुन्दर कहिये बहुत सुख लहै।
ऊपरां ऊपरी बूझी सार, कुसल समाध बात व्योहार॥४०५॥
आन्यौ गनक मान दै घनौं, जनम लगन लेउ बालक तनौं।
वरस मास थति वार नक्षत्र, लिखहु जनम बालक कौ पत्र॥४०६॥
कहैं जोत की सुनहु वखांन, बैठे रवि अति ऊंच थांन।
चैत मास सित आठै भनी, श्रवन नक्षत्र राति पाछली॥४०७॥
ग्रह नक्षत्र बैठे सुभ रास, काल कुजोग न दीसैं पास।
पुत्र अधिक बलवंत सु जान, ईही देह पहुंचे निरवांन ॥४०८॥

जानौं वचन जोति की तनौं, मन अहलाद उपनौं घनौं।
मन वांछत सु दीनौ दान, पहुंचौ गनक आपनैं थांन॥४०९॥
अत सूरज जब कहैं विचार, हनू दीपकौं चलहु कुंवार।
भेटे सबैं मात परवार, जनम महोछो कहौ कुवार॥४१०॥
सुनी बात बोली अंजनी, मामा बात कही मन तनी।
करौ न देरु अब रचै विवान, चलौ बेग हनूवर थान॥४११॥
रचौ बिवान अधिक सुविशाल, घंटा घुंघरीया मौं तिन माल।
हीरा मानक कंचन चुनी, आनौं जहां तहां अंजनी॥४१२॥
वन के देव सु थांनक तना, सुन्दर भगत करी वन्दना।
नमोंकारि पंचऊ मन लाई, पुत्र कुंवर जहां चढ्यौ धाई॥४१३॥
गयौ विमान अधक आकास, पंच वरन मत भयौ विकास।
बालक खेलत उछरौ हस्त, परवत ऊपर परौ निधान॥४१४॥
फूटौ परवत भई आवाज, मानहुषकी पापीस्यौं नाज।
खेल भूंम अंजनी नन्द, मानहु धरती ऊगौ चन्द॥४१५॥
भौमें परो देखियौ कुवार, गगन सुन्दरी करी पुकार।
अहो पुत्र दीनौं दुःख मोह, कबहो जीव तु देख्यौ तोह ॥४१६॥
रुदन सुनत सामैं दुःख भयौ, परौ कुवांर उतर तहां गयौ।
देख्यौ बालक खेलत रली, हाथ पांव चोखे अगुली॥४१७॥
देखे थांन जहां परौ कुवार, परवत चूर भयो दह छार।
जानौं कुंवर महावर वीर, पुण्यवन्त यह चरम शरीर॥४१८॥
लयौ उठाई हरख अत भयौ, धरौं विवान वेगसो गयौ।
पुत्र कुंवर कौ दिनौ जाइ, सीस चूंम रहें कंठ लगाइ ॥४१९॥
उपजौ प्रेम देख सुख होय, आग लगै ज्यौं वरसत मेउ।
चूम्यौ बालक वारंवार, उपजौ पुत्र जगत आधार॥४२०॥

गयौ विवान हनूपर दीप, मेले वन घर जाइ तुरंत।
प्रति सूरज जब यह मत कियौ, भेट नगर लोगन कौ दियौ॥४२१॥
बाधक धुजा मंदर बाजार, तोरन मंदर मंगल चार।
साथ के कुटमलोगु सकुसयौ, मामा कुंवर लियौ घर गयौ॥४२२॥
वाजे नौं वंदनाद निसान, चारन बोले विरद वखान।
कर उछाह आगे हो लई, पुत्र सहित मंदिर मैं गई॥४२३॥
बालक जनम महोछौ भयौ, अधिक दान बंदी जन दियौ।
तीरथ कर पूजै धरि भाव, मन वांछत अत कीयौ उछाव॥४२४॥
मिलयौ सवै मात परवार, नामत पौत सुहनूँ कुबार।
सुन्दर पुत्र दासी संजोग, रहै मामा घर भुंजै भोग॥४२५॥

वस्तुबंध

अति दुःख मुगतौ अंजनी, पूरव कर्म तुस उदै आयौ।
महां अरनमें डरु मानौं, गुफा मध्य तब पुत्र जायौ॥४२६॥

दोहा

सुभ साता आई उदै, मिलौ मात परवार।
सुन्दर मामा घर रहैं, दासी कुंवर.....॥४२७॥

चौपाई

सुन्दर मामा के घर गई, अब सुनौं कथा जो आगै भई।
गयौ पवन दसमुख की सेव, रहै बहुत दिन लंका एव ॥४२८॥
रावन पवन खडो देखयौ, तब विधारु चित में अत कीयौ।
दैकै मानत दसमुख भनैं, पवन सिधांरौ घर आपनौं ॥४२९॥
बाईस वचन राक्षस कौं लियौ, करौ जुहारु घर कौ चालयौ।
सुमरी सुन्दर व्याप्यौ काम, रातदिवस नहिं लेह विसराम॥४३०॥

पुटभेदन जब गयौ कुमार, पहुंचो राजब धावो द्वार।
हाथ दूव राजा को देई, पुत्र तुमारो आए सही॥४३१॥
सुनी बात राजै सुख भयौ, दांन मांन ताकौं बहु दयौ।
नगरी बांधी धुजा विसाल, बांधौ तोरन वन्दनवार॥४३२॥
बाजे भेर निसानौं घाउ, पुत्रसांम है चलियौ राउ।
थारीं हाथ इक अय दही, गावत चली नारी सामुही॥४३३॥
चूम सीसु पुट भेदन राई, रहैं पुत्र कौं कंठ लगाई।
कुसल खेम बूझी खुससार, पहुंचे मन्दिर वाय कुवार॥४३४॥
पहलीयौ रसिवां नहीं चढ़े, भयौ कुसोनु पाव निदिठ खडौ।
जिनवर मन्दर पहुंचे तक्षनां, बंदे देव गुरु आपना॥४३५॥
एक घरी लीनों विसराम, मात पिता के पहुंचे ठाम।
भेटी माता स्यों परवार, बूझी कुसल बात व्यौहार॥४३६॥
सवै कुटम संतोस संमान, गयो पवन सुन्दर के थांन।
देख्यौ सूनौ सवै अवास, ऊंची नीची लेह उसास॥४३७॥
बूझौ मित्र त्रिया कित गई, मेरे मन अति चिन्ता भई।
दिष्ट न परी जहां परवार, सूनौं मन्दिर कौन विचार॥४३८॥
पुरुष एक रावर माहलौ, कहौ विरंदत सवे पाछलौ।
भपो यवागु सुन विकल शरीर, चिन्ता वाढी बहुतक वीर॥४३९॥
पवनु भने सुन मित्र विचार, चलयें नगर महेन्द्र कुवार।
सुन्दर विनु मुझ रहौ न जाइ, बहैं देह बहुत अंकुलाइ॥४४०॥
दोई मित्र चले तिहवार, माता पिता न जानैं सार।
काल मेघ हाथी चढ़ि लयौ, नगर महेन्द्र वेगसो गयौ॥४४१॥
राय महेन्द्र लई जब सार, गयौ सामुहौ मिल्यौ कुवार।
अतकर यांन मंदर आनियौ, कनक सिंहासन बैठक दियौ॥४४२॥

धर एक सुसुर ढिग रहौ, उठे पवन घर भीतर गयौ।
दासी एक पूछ कर मान, सुन्दर रहै कौंनसौ थांन॥४४३॥
दासी सुन बोली तिहवार, कहौ पाछलौं सब व्यौहार।
व्यौरौ ठात पवन सब सुनौ, मानहुं भयौ वज्र कौं हन्यौं॥४४४॥
सास ससुर कौं भेद नहीं भयौ, गुपत ही कुंवर गढ बाहर भयौ।
दीनी विदा मित्र कौं एहु, माता पिता जन सोधो देहु॥४४५॥
मित्र हतौ सुर यौ चलाई, आपनु गयौ अंध बनवाइ।
महा अरन देखियौ तहां, दिनकर किरनि नय सरै तहां॥४४६॥
पवनंजै वन मैं संचरौ, हाथी छोड़ वनह उतरौ।
उत्तम क्षमा करी करजोर, वन में हाथी दीनौं क्षार॥४४७॥
सघन वृक्ष छाया हो रही, रात दिवस तहां सूझै नहीं।
पवनंजै तसु सु भीतर गयौ, बैठ तहां दिन आसन दियौ॥४४८॥
लै सन्यास सु ध्यान दै रहै, मन वच काय आयु ही गयो।
सुन्दर बात कहैं जो कोई अन्न पान तव मुकतौ होई॥४४९॥
हाथी स्वामी भगत सु पास, फिरै रात दिवस देइ पास।
स्वामी तनी सुरक्षा करै, दुरजननी उनकौं संचरै॥४५०॥
मित्र गयौ पुट भेदन थांन, माता पिता करौ गुदरान।
समाचार व्योरै सो कहौ, माता पिता तब अति दुख लहौ॥४५१॥
राजा कहै प्रहस्त सुन बात, तुमतैं भयौ कुंवर कौं घात।
क्षौड अकेलौ बनहिं कुमार, मित्र तनौं नांहीं विवहार॥४५२॥
भनौ मित्र राजा सुन एह, झूठौ दोष कहा हम देह।
पवनजै हम दाउ दियौ, बात भेद तुम सब पाइयौ॥४५३॥
राजा पुत्र गये संजोग मिलै विद्याधर सब लोग।
अब आगे चेल प्रहसत कुंवार, चलीयौ रा उपवन की सार॥४५४॥

देखौ वन परवत असमान, नंदी गांउ कौनाहीं मान।
सिंघ गुफा देखी असमान, दिठा नहीं परै कुंवर कौं थांन॥४५५॥
प्रत सूरजनें पत्री दई, वांची पत्री उत्तर सही।
जाई दूत राजा सौ कही, पुत्र सहज सुन्दर है सही ॥४५६॥
पहुंचौ दूत नहां प्रहलाद, बांचत लियौ भयौ अहलाद।
कछु कचि छोड़ौ सोगु पवनंजै देखौ अबलोग॥४५७॥
सघन वृक्ष वन उत्तम छांह, विचय पवन कुमार।
फिरै सु हस्ती वारंवार, धरी एक विसरा मन लेइ॥
दुष्ट जीवकौं जान न देय॥४५८॥
राजा लोग बोले सब कोय, पटु हाथी पहु देखौ लोइ।
हाथी देख बात सब लही, पवनंजय इह वन में सही॥४५९॥
विद्या एक खेचर को फरी, कुञ्जर एक माया की करी।
काम विरूध्यौ हाथी गयौ तहां, गये लोग पवनंजै तहां॥४६०॥
देखे पुत्र राजा प्रहलाद, पायौ मनमें अति अहलाद।
नमैं माथौ वारंवार, ध्यान सहंत देखे कुमार॥४६१॥
राजा कहै पुत्र सुनि बात, मीचे नैंन संकोचो गात।
ध्यान जोग तुम नांही काल, उठकै वेग मिलौ तुम बाल॥४६२॥
हाथ पांउ तनु रहे सब कोई, जैसौ बिंदु पाथर कौं होई।
मीचे नेतनु बोले बात, हालै नहीं एक क्षिन गात॥४६३॥
रहै बुलाई पिता सब लोग, बोले नहीं रुधिर जोग।
चिंतै मन मैं अति दुःख भयौ, तौलौ प्रति सूरज आईयौ॥४६४॥
भेंट राय बैठे तिहूं ठाम, पुत्र सहत अंजनी मो धाम।
सुनियौ प्रत सूरज के वैन, कसि मसि अंग उधारे नैन॥४६५॥

सावधान हो बुझी बात, कहौ अंजनी की कुशलान्।
प्रति सूरज सब व्यौरा कह्यो, पवन आदि दे सब सुख लयो॥४६६॥
राजा लोग पवन सब गये, चले दीप हनुवर तब गये॥
मिलै सबै हनुमंतकुमार, भये महोछे मंगल चार॥४६७॥
विनौं मान प्रति सूरज कियौ, दिन छहक खेचर राखियौ।
भोजन वस्तर दीनों दान, सबेर गये आपने थांन॥४६८॥
प्रति सूरज घर पवन नरिंद, भोगे भोग सची ज्यों इन्द्र।
महापुत्र देख्यौ सुकमाल, सुख मैं जात न जानैं काल॥४६९॥

वस्तुबंध

सुन्दरी तनी विजोग सुन, पवनंजै अति दुख कियौ।
गुफा ग्राम गड देख सब, वन मैं जोग दियौ॥
पुन दसा आइन दै, मिले त्रिया परवार।
दीप हनूवर पुत्रसौं, बैठे पवनकुमार ॥४७०॥

चौपाई

सुन्दरी सहित पवनंजै रहै, आप दूत रावन कौं कहै।
प्रतिसूरज अरु पवनकुमार, चलो वेग तुम हो असवार॥४७१॥
वाख्यौ लिख्यौ दसमुख तनौं, कटक बुलायो सब आपनौं।
दियौ राज हनुमंत बुलाई, देस नगर गड सौपैं ताई॥४७२॥
माता पिता सौं कहै कुमार, विदा देह मोह अब की वार।
दस मुखकी मैं सेवा करौ॥४७३॥
सुनैं वचन तब बोल्यौ तात, तुम संग्राम न जानौं घात।
बालक पुत्र महा सुकुमार, ताकौ गमन नहीं व्यौहार॥४७४॥

कूरौ वचन पिता तुम कहौ, मो बालक कौ भेद न लहौ।
बालक रवि जब उदय कराई, अन्धकार सब जाय पलाय।।४७५
बालक सिंघ होय अति सूर, हस्ती घंटा करै चकचूर।
सघन वृक्ष वन अति विस्तार, रती एक अग करै उहछार ।।४७६
जो बालक क्षत्रीकौ होय सूर सुभावन छांडौ सोय।
माता पिता मुझ करहु पसाउ, देखो वरुन लंका तत राउ।।४७७
सुनकैं वचन पिता तसु भयौ, हनू हाथ लै वीरा दयौ।
वचन पुत्र तेरे परवान, चलो सेना ले लंका थान।।४७८
पिता तनौं जंब आयुध लियौ, तब हनुमन्त दिवालै गयो।
पूजै देव गुरु वन्दियौं, सब कुटुम्ब मिल भोजन कियौ।।४७९
भयौ हनवंत चलभकौं थान, घोड़े हाथी परै पलान।
मिलै पिता सामा परवार, चले लंकाकौं हनूकुमार।।४८०
भये सगुन सुभ चलती बार, बाई देवी करे फिकार।
वायैं तीतुर वायें ब्याल, वायें सारस सुंड सवार।।४८१
वायें घुघूवा घूमैं घनैं, देह रावन मान अति घनैं।
वाई सुनहा ठौकै कन्धु, मिलैं कुसल सब भाई बन्धु।।४८२
वायैं सिन्धु करै इहकार, वायें रासभ वारम्वार।
आई फिर बाई लोखरी, वांधे सत्रु हनु ईक घरी।।४८३
कुम्भ करेऊ अरु कौंचरी, त्रिया सवारै जेहर भरी।
मनगमल्ल लोह ना हनैं, एते सगुन भएदा हनैं।।४८४
भये सगुन बाजिवौ निसान, सेना चली अधिक असमान।
रहै विवान गगन सब छाई, सूरज किरन न कहूं दिखाई।।४८५
वेग लंका पहुंचे हनुवन्त, रावन सोधो लहौ तुरन्त।
सामैं आन विनौं अति कियौ, कण्ठ लगाय हनू भेटियौ।।४८६

बैठक दीनौं आघौ थान, वीरा वस्तर अति सनमान।
रूप तेज अति देखौं घनौं, भयौ हरख मन रावन तनौं॥४८७॥
दिनगत भयौ अथयो भान, हनूकुंवर कौं दयौ मिलान।
पक्षी गये थे अपने थान, मुन परनाथ रहै धर ध्यान॥४८८॥
गई सन दिनकर परगास, अन्धकालकौ भयौ विनास।
सेना सहित रावन चालियौ, वरुनकौं नग्र पहुंघां बैठियौ॥४८९॥
राजा वरुन सुभट बोलियौं, साथ के पुत्र एकुसै दियौ।
सेना बाहन लै सब चढ़े, वेग आनंद समुख सो भिरै॥४९०॥
खामी तनौं जब आई सु लयौ, वेग जाइ दल सनमुख भयौं।
मोर सुभट ते करे पुकार, ज्यौं वन सत खैले हुरहार॥४९१॥
वरुनरुनै परचंड कुमार, दसमुखकौं दल कियौ संधार।
रावन वडौ साकरौ परो, दीन्हीं आज्ञा हनू पर जरौ॥४९२॥
डारी जाई पांस लंगूर, बांधे कुंवर कियौ दल चूर।
हनुमत जप पेलौं रथ त्याग, गयौ वरुन जब नगरी भाज॥४९३॥
जब जानौं राजा हारियौ, नग्र मांझ कौलाहलु भयौ।
ठाहै कोट पौर आवास, लूटे वस्तु सुभट चहुं पास॥४९४॥
राजा वरुन वैट्यो जाई, आनौं बांध लंकपत पाई।
भयौ वरुन के चित्त अत दुःख, ज्यौं द्वारकौं दाहौ वषु॥४९५॥
दसमुख भनै सुनौं हो वरुन, तुम ही देख न दीजे कवन।
मागै मिलै मार पुन मरै, इह विध क्षत्री कुल आचरै॥४९६॥
सुनी वरुन रावन की बात, छोडौ सोग हरखयौ गात।
हाथ जोर रावनसौं कही, हम अपराध करौ तुम सही॥४९७॥
पाछै वरुन हनूपै गयौ, दीन वचन आगैं भाखयौ।
करौ प्रसाद हनू मुझ सेहु, छोडौ पुत्र भीख मुझ देहु ॥४९८॥

वरुन वचन सुन यौ हनुवंत, दयावंत कर कोमल चित्त।
पास लांगुरी लई वहोर, पुत्र वरुन के दीने छोर।।४९९।।
देखौ राई हनूवर वीर, रूप कला गुन साहस धीर।
दीनी पुत्री करी उछाह, अगनसार वदै भयौ विवाह।।५००।।
दसमुख दियौ वरुनकौं भानु, पुंडरीक दियौ पहलौ थांन।
दल बल साहन अघको दयौ, राक्षस पुन लंकाकौं गयौ।।५०१।।
हनुमनकौं बहु दीनौं मान, हीरा, कनक हस्ती धन ताम।
भगनी सुता अगन कुसमाई, हनू जोग व्याही करभाई।।५०२।।
राज कमलस ढारे बहुमान, कुंडलपुर दीनौं सुभ थान।
रावन बोले सुन हनुवंत, सेवा हमारी करी बहुत।।५०३।।
तुम समान नाहीं बलवंड, सेना सत्रु करै वरवंड।
दुसह काम जो एक न सरे, ते सब काम क्षिनकमैं करैं ।।५०४।।
हनुवंत करी सेवा सहाउ, मिलै अंक भर दसमुख राउ।
गयौ वेग कुंडलपुर थांन, करै राज सो इन्द्र समान।।५०५।।
अंतपुर भुंजै अत भोग, राखे सुखी नगर के लोग।
सेवा करै गडपत भूपाल, सुखमें जात न जानैं काल।।५०६।।
बैठे औसर एक दिवान, दूत एक आयौ तिहि थांन।
कर जुहारु सो ठाडौ भयौ, लिखौ एक हनूंकर दयौ।।५०७।।
पुरी किंकनी महां विसाल, राज करैं सुग्रीव भुआल।
ताके घर सुन्दरी सुतारु, रूपके लागुन बात विचारु।।५०८।।
ताकी पुत्री पदमावती नाम, बनी सबै सामुद्रक ठाम।
तास रूप लख्यौ व्यौहार, करौ बाहु चउ होउ असार।।५०९।।
देखौ हनू रूप समुदाय, पूंछौ मन्त्री सेवक राई।
सब कुटुम्भकौं आइ सु लयौ, पुरी किंकिंदी वेगो गयौ।।५१०।।

सब सुग्रीव सुनौं व्यौहार, कियौ बहुत आगम आचारु।
साथ कुटुम साम हौ गयौ, कंठ लगाई हनू भेटयौ॥५११॥
वेदी मंडप रची विसाल, बांधे तोरन मोतिन माल।
वर कन्या हथजोरो भयौ, विप्रसाख वैसांदुर दयौ॥५१२॥
झारी हाथ भरी सुग्रीव, हनू नीरु अंजुल भर दीनु।
पुत्री हस्ती हेम सुजान, ग्राम देस पुर पट्टन थान॥५१३॥
सजन लोग बैठे तिह ठाम, दान मान दै राख्यौ माम।
जथा जुगत कीनौं आचारु, गए कुण्डलपुर हनू कुमार॥५१४॥
करै राज अंत इन्द्र संमान, देस नग्र गढ ग्राम निधान।
दुर्जन कोई धीर न धरें, भूचर खेचर सेवा करै॥५१५॥
जिनवर देव धर्म गुरु भक्त, मल मिथ्यात विस्त सब तिक्त।
विधसौं दांन चार पुन देई, पात्र कुपात्र परछा लेई॥५१६॥
व्रत तप सील आचार उपास, देव सास्त्र गुरु धरै विश्वास।
सिंघ भूंम पहूंचे जे जिना, तिनकी करै पूजा वन्दना॥५१७॥
चोर चुगल नहीं राखै नांमु, गाई सिंधु जु लख्यौ वैईक ठाम।
पालै परजा न्याउ वर हरैं, हनू राज कुंडलपुर करै॥५१८॥

वस्तुबंध

हनु जनमैं गुफा मझार, दीप हनूवर व्रधियौ।
कष्ट कलेसु तज्यौं तबै, पूर्व पुण्य तब सु उदै आयौ॥
वरुन पुत्र सब बांधियौ, सारे दसमुख काज।
इन्द्र समांन सुख भोगवै, कुण्डलपुर कौं राज॥५१९॥

चौपाई

सभा सहित बैठिये हनुवंत, दूत एक जहां आप पहुंत।
पुरी किंकदी राय सुग्रीव, लिखौ लेउ यह ताकौं देउ॥५२०॥

वाचौं लिखौ लेइ हनुवंत, भयौ सोग अतत्व मन चित।
खरदूषणकौं सुनौं निपात, अरु संबूक वन्दयौकी बात॥५२१॥
मनमैं सोक कियौ अत घनौं, मनर जानियौ सुसरातनौं।
अनंग कुसमायल लाधी सार, पिता पिता कह करी पुकार॥५२२॥
सज्जन लोग समुझावन आई, राखौ चित्त सुस्थ कर ठाई।
कर असनान देव पूजिया, कीनी सबौ पिता की क्रिया ॥५२३॥
दूजे दिन इक आयौ दूत, लिखौ लै दियौ हाथ हनवंत।
सीता हरन कहत सिव बात, लक्षन राम तनी कुसलांत ॥५२४॥
रामचन्द्र कीनौ उपकार, सब सुग्रीउ कहौ व्यौहार।
राम छुड़ाई आन सितारा, सो सब सुनौं बात व्यौहारा॥५२५॥
हनुमत मनमैं चिन्तयौ, रामचन्द्र सुभ कारज कियौ।
दुष्ट हतौ निरधन हराई, दियौ राज सुग्रीव बुलाई॥५२६॥
कियौ काम जु राघौं कहौ, क्षत्री धर्म हमारौ रहौ।
प्रत उपकारत करई कोई, हसे लोग अत उपजसु होई॥५२७॥
क्रतघनी जो उपगार न करै, तास भार धरती थरहरै।
जीवदया विनु धर्म पलाई, मानस जन्मत सु निरफल जाई॥५२८॥
सेना साहन चली अपार, पहुंचे पुर किंकनी कुंवार।
मिले आई सुग्रीउ नरिन्द, बूझी कुसल भयौ आनन्द॥५२९॥
भूचर खेचर जेते राउ, हनू देस्र मन कियौ उपाव।
जथा जुगत भेदिकौ लोग, समाधान कहि जोगा जोग॥५३०॥
सुग्रीव सहित सब राजा भए, हनू साथ राघौ ढिग गये।
रामचन्द्र देख्यो हनुमन्त, तज आसना उठियो विहसंत ॥५३१॥
हनू लगायौ चरनन हाथ, रामचन्द्र भर भेटे वाथु।
भयौ हरख अति अंग न माई, आसन आधौ दियौ रघुराई॥५३२॥

अधिक विनय कर वारम्वार, पूछी कुसल प्रीत व्यौहार।
राजा सबै भई इक गथैं, सिया गया से बैठे मथे।।५३३।।
हस बोलयो लक्षनाकुमार, लंका मार करौ दहि छार।
मारौ रावन घलौघान, ल्याऊं सियारामकी आन।।५३४।।
नल अंगद बोले सुग्रीव, धीरे काजसंरहो देव।
ववै वृक्ष धीरे फल खाई, धीरे मुनिवर मुकतै जाई।।५३५।।
धीरे विद्या सीझै रिधि, धीरे होय काम सब सिद्ध।
पहलौ एकवसीठ मोकलो, सीझै काम होई जौ भलौ।।५३६।।
सबै लोग मिल बोले सही, कारज एक हनूथैं होही।
राक्षस राखें याको मान, सिंघासन बैठक दे थान।।५३७।।
बोले हनू सुनौं हो देव, बात विचार पंचकौं एहा।
सुनियो दोई रघुपति राई, ल्याहौ सिया वेगसो जाई।।५३८।।
बोले राम सुनौं हनुमंत, सबके कारज तुमते हंत।
बालापनगिरि कीनौं छार, वरुन तनौ लाधियौ कुमार।।५३९।।
तुम प्रचंड अति साहस धीर, क्षत्रि नमाउ महा वडवीर।
कूर कपट नहीं तेरे भाउ, पर उपगाई सुध सुभाव।।५४०।।
करौ सिधि लंकाकौं चलहू, कीको कारज होय जो भलहूं।
सीतासै ती संदेसौं कहैं, लक्ष्मन राम किदां रहै।।५४१।।
राम दुःखी तने बियोग, विसेसमान छोडे सब भोग।
रात दिवस है तुमरो नाम, घरी एक नहिं लेह बिसराम।।५४२।।
कह जो सिया छुडांऊ तोय, सुफल जनम तब मेरो होय।
त्रिया गया सो जो नहिं करै, ताके भार धरती थरहरै।।५४३।।
और संदेशौ कहौ कुमार, मनमैं राखै मंत्र नवकार।
जिनवर वचन हिये में धरे, मल मिथ्यात सबै परहरै।।५४४।।

दुराचारी दासी कुंदनी, मतवासी मिथ्या दृष्टिनी।
पुरुष पराये जे आचरैं, भूल विश्वास न तिनकौं करै।।५४५।।
रहत अठारा दौस न देव, गुरु निरग्रंथि सास्त्रकी सेव।
वानी जिनवर मुख नीसरी, इनकी दिढ ना चित्त में धरी।।५४६।।
संजम सील सकल आचार, दान भाव श्रावक व्यौहार।
छोडौ जोजन जाय शरीर, सिया संदेसौ कहियो वीर।।५४७।।
हीरा रतनन कुंदन जरी, निसानी दीनी मूदरी।
रूठौ कहा करौ आलाप, उपजै बुध सु कहितो आप।।५४८।।

दोहा

कहे संदेसौ रघुपती, परे मोहवस जान।
दांन मांन दीनों अधिक, पढ्यो अंजनी बाल।।५४९।।

चौपाई

हनू राम सो भयौ जुहारु, मिले सजन अरु मित्र परवार।
नमोकार मुखतैं भाखियौ, बैठ विमान गगन उडि गयौ।।५५०।।
लंका गड परवत असरार, नाकी नन्दी वन सरोवर नाल।
जाई विमान गगन पंथ चढ्यो, हनू दिख दधमुख वचन पढौ।।५५१।।
स्यार सुवर सारडूल अति घना, चीते चरखरे अरु हिरना।
करे सबद अति वनमें घनैं, चारना हनू देखे दो जनैं।।५५२।।
तहद वांटि लागी चहुं पास, पूंछी मार्ग चले आकास।
धुवा अधकाल अत भयौ, मुनिवर जुगल हनू देखियौ।।५५३।।
देखौ कष्ट मुनीवर तनौं, जल समुद्र में आनौं घनौं।
ज्वाला अगन बुझाई आई, भाव सु धर्मन बंदे पाई।।५५४।।
कियौ बिनौं बैठे तिह ठाम, बूझी अगन लीनौं विसराम।
नमस्कार कर आगे चलो, थको विमान हनूपर चलो।।५५५।।

करै कुमार दिये में चित्त, कै कोई तुम पर कोई मित्त।
कै जिनभुवन सत्रुकौ थान, कौन हेत सौ घुम्यौ विमान॥५५६॥
मंत्री बोलो सुनौ कुमार, गड इक दीसै अत विसतार।
खाई कोट महा असराल, बाघ सिंघ राक्षस विकराल॥५५७॥
बात सुनत अत उपजौ कोप, आयुधु लयौ चक्र आटोप।
राक्षस मार करौ जहं क्षार, वाह कोट में गयौ कुंवार॥५५८॥
गुफा एक देखी भयभीत, निकरौं सिंघ महा विपरीत।
तीक्षन दंत नख रोमाबली, मुखसे निकसै अगन परजली॥५५९॥
सबै निपात गयौ धर हाथ, गयौ नगर में बंदर नाथ।
राजस बड़ौ वज्रमुख नाम, विह देखत हनू लूटत निग्राम॥५६०॥
चढ़ौ कोप कर राक्षस बली, मानौं मेघ घटाऊ क्षली।
दीरघ दंत महा विकराल, आयौ जहां अंजनी बाल॥५६१॥
खरगवान विद्यासौं भिरौं, बंदर सेना दस गुन कहौ।
देखौ राक्षस अति बलवंत, मनमें कष्ट भयो हनुमंत॥५६२॥
करौ सेस बंदर पत घनौं, फेरौं चक्र हाथ दाहनौं।
राक्षस सुहन्यौं सीसुगीर परौ, मानौं चका उत्तर धर परौ॥५६३॥
सुनी बात लंका सुन्दरी, मरना पिता सुन अति दुःख भरी।
भयो कोप चढ़ ठाड़ी भई, हांकत वकत अर हनुपै गई॥५६४॥
खोटौ वचन जु मुखतैं कहौं, मास एक में भूख जु करौ।
अब जैसे मद मातौ गजदंत,
त्रिय समान बाल तौलौं अपनौं, सारे कुल लाजे मोतनौं ॥५६५॥
मेल सुन्दरी बात अनेक, हनूसरी रन लाग्यौ एक।
बहुत मास वीतौ संग्राम, सेना सुभट न छाड़ै ताम ॥५६६॥
देखो पौरष क्षत्री तनौं, मनमैं अचरज पायौ घनौं।
सुभट लड़ाई जीती घनी, आधीन त्रिया इन तनी॥५६७॥

सुन्दरी देख्यौ रूप कुमार, कामदेव के परतक्ष भार।
कामदेव नत नवघी सोई, केवली देव कहौं सो होय॥६६८॥
यासग भोग भोगउ घनौं, सफल जनम जब ही हम तनौं।
पढ्यौ लिखौ वान सुख बांध, मिलहु कंत हमंतू सो सिद्ध॥५६९॥
आयौ लिखौ वानं तिहि ठाई, बंदरपति कयौं उठाई।
तजौ कोप अति भयौ सनेहु, अगिन लगै ज्यौं वरसै मेघ॥५७०॥
सुन्दर हनू बैठे एक ठाई, उपराउपरी मान भान।
कामबांन सौं पीडित भई, पिता मरन सो बिसर गई॥५७१॥
भाई पुत्र सगौ नहीं तात, सजन कुटुम न पुत्री मात।
कोई किसहू सगौ न होई, स्वारथ अपनौं करै सब कोई ॥५७२॥
लंकासुन्दरी पूछौ कन्त, आए कौन काज हो पन्थ।
हम सरीर संका ऊपजी, व्यौरौ बात कहौ आपनी॥५७३॥
बोले हनू सुनौं सुन्दरी, रामचन्द्र किहकिंदापुरी।
दस मुख हरी सिया तसु नारी, तासु गये संचले कुंवार॥५७४॥
बीच हमारौ खग्यौ विमान, देखो नगर तुमारौ थान।
राक्षस हन्यौ सपन अति लोग, हम तुम भयौ प्रति संजोग॥५७५॥
सुन्दरी बोली सुन हो कन्त, रावन दुष्ट महा बलवन्त।
जौ कहौ रघुपति की बात, तौसीस तुमारौ करहै घात॥५७६॥
चौदह सहस विद्याकी सिद्धि, भुगतै अर्धचक्रीकी रिधि।
भूचर खेचर सेवा वहैं, सो क्यों बोल तुमारौ सहैं॥५७७॥
बोले हनू सुन्दरी सुनौं, अथरू नहीं आपनो।
कीजे सुकृतु पर उपगार, धर्म अफल ज्यौं रात अहार ॥५७८॥
दान बिना निरफल घर देस, परग्रह सहत दिगम्बर भेष।
ईह जान कीजे उपगार, दान सील संजम आचार।

लेह क्रिया सोई सु जान, होय सु जस पावै निरवान ॥५८०॥
दसरथ नंदन गुन गम्भीर, पर दुःख भंजन साहस धीर।
उपजे दुःख सुख हम देह, कारज करै रामकौ एह॥५८१॥
कही बात सुन्दरी समुझाय, सेना साहन छांड़ौ ईह ठाह।
धीर चित कर चले महंत, लंका माउ गये हनुमंत॥५८२॥

वस्तुबंध

पुरी किकिंधा राम सुग्रीव,
नृपन सकल मिल मनु उठयौ, हनू जोग वीरा दयौ।
सिया गया सो करत जानौं, राम चरन खंदर नमौं॥
मनमें धर अभिमान, बीच सत्रु जीतै बहुत पहुंचे लंका थान॥५८३॥

चौपाई

देखी लंका हनू कुमार, जोजन सात दीर्घ विस्तार।
चौराई जोजन बुह तनी, सघन वसै अति सोभा घनी॥५८४॥
कोट मुरज लागी आकास, फिर समुद्र आयौ चहुं पास।
सात पौरकगूरे उतंग, चित्र चतेरे लिख्यौ अभंग ॥५८५॥
राउ रंक खत खनें आवास, धन कन भरै सबै आवास।
घर घर पुरी बाधाए होई, कान सबद न सुनाये कोई॥५८६॥
बंदर पति मनमैं चिंतयौं, गुपत विभीसन मंदर गयौ।
द्वारपाल पढ्यौ तुरंत, जाई कहौ ठाड़ौ हनुमंत॥५८७॥
द्वारपाल धरनी पर गयौ, आये हनूराव सौं कियौ।
बोले हरख विभीषन राव, भीतर हनू वेगलै आव॥५८८॥
पवन पुत्र पहुंचौ तस नाथ, सभा सहित जहां विभीषन नाथ।
देखौ आवत बंदर नाथ, आसन छोड़ मिलें भरवाथ॥५८९॥

ऊपरा ऊपरी बूझी सार, कुसल क्षेम अरु नेह व्योहार।
बैठे थानक एक नरिंद, ज्यौं आकीस सूरज अरु चंद।।५९०।।
बात विचार कहै हनुमंत, सुनौ विभीषन राउ महंत।
तुमरौ कुल निरमल सुविशाल, उदै बाहु भये आद भूपाल।।५९१।।
पुत्र राज दै संजम लयौ, देव खेचर नरन पूजियौ।
तासु वंसजो भयौ मरद, पहुंचे मुकति काठकुम फंद।।५९२।।
उपजौ कुल रावन बलवंड, मुगतैं राज तीन ही खंड।
अंते परन सु सहस अठारा, इन्द्रजीत तसु बड़ौ कुमारा।।५९३।।
कियौ कुकर्म ठानी मत बुरी, हर आनी राधौ सुन्दरी।
राक्षस वंस हतौ ऊजलौ, हरी त्रिया कीनौं भूसुरौं ।।५९४।।
देउ सीख दसमुख कौं जाय, नार पराई देव पठाय।
परस्त्री की इच्छा करै, अपजस होय नरक संचरै।।५९५।।
कहह बिभीषन सुनहू वार, मैं समझाउं वारंवार।
तजौ सिया कीनौं हठ घनौं, कुछ पाप आयौ बातनौं।।५९६।।
सुनौं वचन धरयौ अभमान, बंदरु गयौ सियाके थान।
नंदन वन मैं देख्यौं तहां जाई, फूली फली जहां वनराई।।५९७।।
कदली चौंच आमना रंग, दाख छुहारे अरु मातलिंग।
कमर खटक हर कैंथ अनार, लौंग बादाम सुपारी चार ।।५९८।।
पूझौ मरुवो जाही जाई, केतकी मरुवौ अति महकाय।
पाडख कुल वेल सुवंती, वनकी सोभा भूख जेवती ।।५९९।।
माउ सरोवर उत्तम नीर, कुवा वाउरी गहिर गंभीर।
फूल माउ कमल अत घनैं, मधुकुर नाद करै रुनझनै ।।६००।।
देखो हनू सियाकौ रूप, सुर अपसरातैं अधिक सरूप।
मेरु समान हि सील अडोल, नहचै धरै देव गुरु बोल ।।६०१।।

गयौ कुंवर सीता सनमुख, देखत वदन भयौ अति सुख।
दिष्ट अगोचर कीयौ उपाय, बैठो सीसे डारी जाय॥६०२॥
देखी सीता तरवर क्षांह, डारी मुंदरी झौगौ दाली मांह।
परी मुंदरी दैखौ सिया, अचरजु भयौ जनक की धिया ॥६०३॥
लई मूदरी कंठ लगाई, जैसैं मिलैं वक्षाकौं गाद।
वंद वदन सिया भयौ आनंद, मानहू मिले दसरथा के नंद॥६०४॥
सीता कहै मुद्रका सुनौं, कहौ विरतत वीर आपनौ।
यामैं लिखौ रामकौ नाम, लायौ पुरखकौं नई हि ठाठ॥६०५॥
राक्षस लोग खड़े थे हार, हरख वदन देखी रघुनारि।
सेवक एक गयौ तहां धाई, कही बात रावनसौं जाई॥६०६॥
सुनौं स्वामी बात हम तनी, सीता बहुत दिवस अनमनी।
बोलत विहसत देखी आज, मन वांछन अब हूहै काज॥६०७॥
सुनत बात रावन सुख भयौ, कारज सिद्ध हमारौ भयौ।
मंदोदरी गई सियके पास, कहै कपट धर वात विलास॥६०८॥
सहस अठारा आगैं नार, तापर त्रिया होउ कुमार।
पुन उदय आयौ तुम तनौ, करै मोह लंकापति घनौं॥६०९॥
सज भोग भुजौ सुख एह, राम हिय कर पापनी देह।
इतनी बात मंदोदरी कहीं, तब सीता खिस्यानी सही॥६१०॥
कहै सिया सुन मंदोदरी, ते बुरी बात मुखसौं उचरी।
रावन महा पापकौ मूल, और दुष्ट नहिं ताही सम तूल॥६११॥
जे परपुरुष नार भोगवैं, सुक्रत सील वृत सवरौ गमैं।
अपजस होय न पावै सुख, जनम जनमते देखौ दुःख॥६१२॥
राघौ बिना और नरनाथ, ते सवई भाई सम तात।
इह भव राम नाम आधार, मन वच काय राम भरतार॥६१३॥

सुनी बात बोले हनुमंत, धन धन सीता तेरो सत्त।
कत बात जे नारी भनैं, होय पवित्र नाम तम तनैं॥६१४॥
ऊरध वानी सीता सुनी, हिये हरख चिंता ऊपनी।
कौंन पुरुष बोलै आकास, दरसन देहु होय परगास॥६१५॥
बंदर पति मनमें चितयौं परगट रूप आपनौं कियौ।
बैठी सीता अरु त्रिय घनी, गयौ मांझ बालक अंजनी॥६१६॥
मंदोदरी देखियौ कुमार, मनमैं हसकैं करै विचार।
संकार हित रूप अभिमान, आयौ कौन अगोचर थान॥६१७॥
हनू जुगल वर मस्तक दियौ, नमस्कार सीतानैं कियौ।
तम जसु घनौं सुनौं स्वामनी, देखो मोह सु दिष्ट आपनी ॥६१८॥
तुम समान रूप नहि नार, संजम वृत अरु सील अवारि।
धनि पिता माता जिह तनी, रामचन्द्र धन जिसु कामनी॥६१९॥
रघुपति समाचार सुन माय, लक्ष्मण सहित हमारे ठाय॥
करै दुख तुम तनौं वियोग, विससम भुंजै सबई भोग॥६२०॥
रात दिवस तेरेऊ नाम, लेउ न घरी एक विसराम।
राघौ कहीं छुडाऊं तोह, सफल जनम तव मेरो होय॥६२१॥
सूनी बात तब बंदर तनी, उपजी संग सिलाई गई।
बूझै सीता कर आनंद, कहौं कुसहैं दसरथ नंद॥६२२॥
राम विरतंत हनू सब कहौ, सीता सुनत बहुत सुख लहौ।
देउ पुत्र मेरो सिर हाथ, जीवन लक्ष्मन राघौ नाथ॥६२३॥
समाचार सब बंदर कहौं, मंदबरि मन अचरजु लहौ।
धन हो राघौं तेरी बुधि, ईस दूत बिन होय न सिध॥६२४॥
सीता कहै सुनहुं कुंवार, याक्षैं कहौ भयौ विवहार।
लक्ष्मण युध करन जब गयौ, सिंहनाद सबद पूरीयो ॥६२५॥

सबदु कान राघौको परौ, दसरथनंदनकौं पतव भरौ।
क्षोडी बनमैं एकांकनी, गए नाथ जव लक्ष्मण भनी॥६२६॥
मुझ हर ल्यायौ लंकानाथ, जानौं नहीं पाछली बात।
गड परवत सागर असराल, लंका गढ़ किम आये बाल॥६२७॥
बोले हनू सुनौ हो मात, कहौं पाछली बीती बात।
लक्ष्मण धर वाक्यौ संबूक, खरदूषन हनियौ निसंक॥६२८॥
लंकापति तसु बाहर गयौ, बीच रूप तेरो देखियौ।
कूडी विद्या अब लगे किली, पावन मैं स्त्री किहतनी॥६२९॥
विद्या कही जनककी धिया, सीता नाम राम की त्रिया।
रच प्रपंच लंकापति राई, विद्या दीनी एक पड़ाई॥६३०॥
सिंहनाद जब कियौ अमान, गये राम लक्ष्मण के थान।
रावन तुमको इहविध लाइयौ, थान निरंजन वासौ दियौ॥६३१॥
तुम उजिल कुल कियौ रघुतनौं, सुजस सील राखौ आपनौं।
दंडकवन आये फिर श्रीराम, तुम विन देखौ सूनौं ठाम॥६३२॥
अत अकुलाई धीर नहीं धरै, पशुपक्षी सब बूझत फिरै।
सीता सीता रटतो नाम, वन मठ लै देखौ सब ठाम॥६३३॥
सीध तरुषत कियौ अति घनौ, कहत संदेशौ सीता तनौं।
विलखैं राम आपने चित्त, इहां नवि नाहीं कोई मित्र॥६३४॥
बहुत कालेसु करै रघुनाथ, तव तहां आयौ लक्षण भ्रात।
सीता हरन बात तिन कही, दण्डक वनतैं निकसें सही॥६३५॥
कोईक काल दिवस जब गयौ, कर्म योग सुग्रीव सु गयौ।
रामहि मिले दियौ अतमान, कौन जोग आये इह थान॥६३६॥
सुनी बात बोले सुग्रीव, विनती एक सुनौं हौ देव।
कष्ट आपदा उपजी घनो, ता कारण आए तुम भनी ॥६३७॥

दुष्ट रूप धर मोह समान, आयौ जहां हमारो थान।
करी बुद्धि धरनी हम तनी, दये किवार पौर तक्षनी ॥६३८॥
अति परचंड अधिक अभिमान, नग्रमाऊ हम देह न जान।
करौ सहाय राम हम तनौं, ज्यौं पावै थानक आपनो ॥६३९॥
सुनी बात रघुपति तसु तनी, मनमैं बहुत दया ऊपनी।
सीता हरन बात वीसरी, तक्षन गये किंकदीपुरी॥६४०॥
वट सुग्रीव तव निकारौ आई, दियौ राज सुग्रीव बुलाई।
लक्ष्मण राम दोई वर वीर, पुरी किंकदी सही है धीर॥६४१॥
विद्याधर भूमि गोचरी, बैठे मतैं बुधि उच्चरी।
बात विचार सबनकौं भयौ, लंका ग्राम मौंकौं पाठयौ॥६४२॥
सारौ सकल हमारौ काजु, सुसुर हमारे दीनों राजु।
प्रत उपगार न जौं अब करौ, अपजस होइ नरक संचरौ॥६४३॥
सीता सुनौं भली इक बात, तक्षन करौ रावन को घात।
जिनपुरान मह ईम भनौं, प्रतके सौकौं कैसे हनै॥६४४॥
बानी वीर जिनेश्वर कही, एहु कथा तुम जानहु सही।
सीता सुनी हनुमत की बात, हरख्यौ चित्त हुलास्यौ गात॥६४५॥
स्वामीदेव तुम भगत सु जान, तेरे वचन सही परवान।
तुमसम कोउ नहीं संसार, काज परायौ सारन हार॥६४६॥
या सब बात सुनी मंदोदरी, बन्दरसों बोली रिसभरी।
तुम प्रचंड बल अधिक अपार, वारुन तनैं बांधियौ कुमार॥६४७॥
करै मया अति दसमुख राई, बहिन सुता तसु दीनी व्याह।
दियौ नग्र हस्तीकौं कान, वीरा बैठक अधौ थान॥६४८॥
कर्म वियोग पवनकौ पूत, सो पुन कियौ राम कौ दूत।
अधिक चतुर नर कहौ करै, करम करावै तैसो फिरै॥६४९॥

सुनैं वचन मंदोदरी तनैं, बंदरपति बोले ततक्षनैं।
धरती घनी फिरौ संसार, तो सम नीच न देखी नार ॥६५०॥
विद्याधर के कुल ऊपनी, रावनपक्षी त्रिया मैं सुनी।
इन्द्रजीत सुत मंदोदरी, सोपुन कर्म कुट्टनी करी॥६५१॥
सिया भनैं सुन मंदोदरी, विहस नाक जै हैवा पुरी।
चित्र आपने देख विचार, गर्व न कीजे यह संसार॥६५२॥
भरत गर्व अत करतौ घनौ, बाहुबल भानौ तहि तनौं।
बहुत नरिन्द गर्व करि गयौ, नाम नासकौ जाय न कहौ॥६५३॥
वज्रावर्त धनुष तसु हाथ, खरदूसनकौं वरौं निपात।
लक्ष्मण वीर ऐसे हैं बली, तासौं गर्व कंसो वापुरी॥६५४॥
कौं रावन को लंका ग्राम, कुंभकरन है जाको नाम।
जब कापैं रघुनंदन राई, सुनि ताकौं प्रलय हो जाई॥६५५॥
सुनि बोली राक्षसकी नार, अहो उठी अति वादन वार।
तूट काडहं फल नवि लेई, दिन दसरा महि जीवन देई॥६५६॥
सुनौं बोल मंदोदरी तनौ, बंदरनाथ उठे तक्षनौं।
हती जेती दसमुखकी नार, ते दीनी वनतैं सचें निकार॥६५७॥
सीता आगैं जोरे हाथ, करहु पारनौं उठ हौ मात।
सोक विषाद सवै परहरौ, हम ऊपर तुम किरिपा करौ॥६५८॥
मानौं वचनु हनूमतकौ सिया, कर अस्नान देव पूजिया।
अधिक महोछौ जिनकौ कियौ, दिवस बार हैं भोजन लियौ॥६५९॥
मंदोदर वावन पैढाई, व्यौरौ बात आई सब कही।
स्वामी तम भानैं जी कंत, सीतायैं आयौ हनुवंत॥६६०॥
पठ्यौ राम गर्व अत भनौं तुमकौं तो तिन करकैं गनौं।
सगो सोदरौ कर हन कान, नंदन वनमें बैठो आन॥६६१॥

हनुमत कहै सुन सीत बात, कांधे बैठ चलो हो मात।
करौ माई मो आयु सदेहु, क्षिनमें राम मिलाऊं एह॥६६२॥
बोली सिया सुनहु हनुमंत, यह तौ जुगतौ होई न पुत्र।
जैसो करम उदै भयौ आई, तासौं क्यौं अब छूटहु न जाई॥६६३॥
देवर लक्ष्मण राघौ कंत, जा सुहाई कुवर हनुवंत।
देवशास्त्र गुरु निहचै जान, सो सीता क्यौं छानैं जाई॥६६४॥

वस्तुबन्ध

आयौ लंका पवनकौ पुत्र, विभीसन सौंमतौं ठपौं।
बात विचार सबै लही,
लंकापति अति दुष्ट जान्यौ, अहंकार मनमैं भयौ॥
पहुंचो वन गरजंत, निरसानी दै मूदरी सीताह नम्यौ तुरंत।
समाचार सब रामके, कहियौं कुसल व्योहार।
सिय करायौ पारनौ, निवसे हनूकुवार॥६६५॥

चौपाई

कंतऊ काल सिया ढिग रहौ, पाछै वन देखन चालियौं।
बहुतक वन देख्यौं मनु लाई, वृक्ष जात बहु गनी न जाई॥६६६॥
स्त्री जवन सु देख्यौ रूप, कामदेव से अधिक स्वरूप।
स्वर्ग इन्द्र कैं नागकुमार, केवल भद्र कृष्ण औतार॥६६७॥
सुनत भद्र रावन दुख भयौ, देख्यौ ठाठ जु वनमें गयौ।
चाकर बहुतक दिये पठाई, वेग बांध ल्यावहू ईह ठाई॥६६८॥
विदा लेह किंकर चालियौ, तक्षन नंदन वनमें गयौ
क्रीडा करै अंजनी बाल, मानहु देख्यौ परगट काल॥६६९॥
बोले किंकर क्योरे ढीट,पावन में क्यौं आई यईठ।
महाहरामी बंदर नीच, आई सही तुमारी मीच॥६७०॥

सुनैं वचन कौंपियो कुवारु, किंकर नार कियौ संथार।
राक्षस बैचौ एकपं गयौ, ब्यौरौ बात सबै तिह कयौ॥६७१॥
जीवत बांध ल्यावहु मो पास, कान नाक तसु कीनौ नास॥६७२॥
गये सुभट जहां बंदर ठाम, घनैं काल कीन्यौं संग्राम।
मोर सुभट परे बहु लोथ, भिरे भिरे बांधा वो वोथ॥६७३॥
मारयौ कटूक कियौ संघारु, रहौ एकसो गयौ पुकार।
दसमुख मैं ल्यायौ अपनैं प्रान, बाकी गए सु जम घर आन॥६७४॥
अहंकार धर बंदर वंस, वनस बटोर कियौ विध्वंस।
कमरख केरि कंथ चिंचनी चौंच सुपारी जाय न गिनी॥६७५॥
नीबू जामू तंदू अचार, अमृत फल कटहल अनार।
पाडर धव धूसर बादाम, कटहरे खंडह अनास सु ठाम॥६७६॥
हररा हरद आंवरी पतंग, दाख छुहारे पीपर लोंग।
कर्प बबूर सदा फल रंग, धामन फल सेवती नारंग॥६७७॥
नैवज हररे निवहि गोल पीपर देवदारु अवरोट।
ताडपत्र वंस बिजौरा, राई महूवा और बिजौरा॥६७८॥
जुही पारजात अरु जारु, वेल चमेली चंपौ पराई।
बूझौ मरुवौ अरु मालती, कैतकी केवरौ अरु सेवती॥६७९॥
केतकी केवरौ अय सुगंध, चंदन अगरु वासु मचकुन्द।
परबत जात जाई नहीं कहीं, डार एक नहि ठाडी मई॥६८०॥
कुवा वाउरी पुहकरनी ताल, तोरन मंडप वेदी साल।
टारै मंदर धुजा विसाल, जानौं वीत्यौ परलय काल॥६८१॥
नगर मांउ कोलाहल भयौ, वनमाली राक्षसपै गयौ।
स्वामी आयौ हनूकुमार, वन विध्वंस उड़ाई क्षार॥६८२॥
सुनी बात राक्षस परजरौ, मानौ वैसा दुर घृत परो।
धनुस बान कर लियौ ऊंचाई, चल्यौ जहां कपि ध्वजा उठाई॥६८३॥

तब तहां आयौ इन्द्रकुमार, मेघनाद बल अंत न आय।
जोर हाथ सो ठाडो भयौ, देखौ पिता हमारो कियौ॥६८४॥
विदा सीख लै रावन तनी, चलौ कुमार सैंना तसु घनी।
बाजे सिंधू भेर निसांन, सहनाई बाजै असमांन॥६८५॥
कोय कोय ध्वज कीनी गाज, मानौं पक्षी ऊपत्यौ चाज।
हसमुख नंदन हनूकुमार, होई जुऊ वीत्यौ संधार॥६८६॥
हाथी सों हाथी आरोहैं, पालौ ले पालेको ठाहैं।
पाईक कौं पाईक देई घाव, रथसे तीरथ पेलै राव॥६८७॥
कायर, बहुत भाग दईर पीठ, दन्त न पकरे सरे।
एक सुभट रन आये सरे, पहो चोरन किस ही करै॥६८८॥
एक मारे इक करे पुकार, पोषे ले ज्यौं वसन्त हुलीहार।
एकै सुभट बहुत वन करै, ठूठे सिर ठाडे धर भिरै॥६८९॥
एकै सुभटकौं कोप सुभाव, भागे जात न घाले घाव।
उठे गगन पक्षी असमांन, भयौ सुरन में गीध मसांन॥६९०॥
इन्द्रजीत सोचै वरवीर, हनूमान है चरम शरीर।
दोई पालै कोई न टरै, सेना सुभट वाद ही मरै ॥६९१॥
तब मनमांहीं करै विचार, ब्रह्म पांस डारी तिहवार।
हाथ पांव तनु गाडौ कियौ, बांधौ कपि आगैं धर लियौ॥६९२॥
जब बांध्यौ निकस्यौ बाजार, देख्यौ अस्त्री पुरुष संसार।
उपरां उपरी करै अलाप, कपट रूप यो वधियौ आय॥६९३॥
सुर्जन कहै सुनौ हो लोग, ऐसौ जुरौ कर्मसंजोग।
कबहु रंक राई हो जाई, कब हूं राजा रंकह थाई॥६९४॥
बालपनै गिर कीनौ क्षार, वरुन तनै बांधियौ कुमार।
सो हनवन्त वेद में परौ, सहिये करम सहावै करो॥६९५॥

जीती लंका सुन्दर नाम, राक्षस वन नहिं राख्यौ ठाम।
सो कापि धुजरि धना वस करौ, ब्रह्म पांस गाठी के जरौ ॥६९६॥
एकौ कहै ऊठौ आलाप, कर पाखंड बधायौ श्राप।
या सम सुभटन क्षत्र न, माऊं महां वडवीर॥६९७॥
एके कहै तू ऊठौ भनै, बोलै साख नहीं मैं सुनौं।
कबहुक नर सुख लीला करै, कबहु कि भीख मागतो फिरै॥६९८॥
तबलग इन्द्रजीत लै गयौ, रावन आगै ठाडौ भयौ।
लेहु पिता यो हनुकुमार, देउ बजा जैसो विवहार॥६९९॥
बोलौ दसमुख बंदर सुनौं हो तोकौ भानेज देखि टोरै कर्म पहुंचौ।
तास वंस तम अतबल दंड, भुगतत राज तीन ही खंड॥७००॥
खेचर भूचर सेवा करै, दुरजन कोई धीर न धरै।
राक्षस वंस हतौ ऊजरौ, तुकलंकुल गाई कियो भूसरौ॥७०१॥
जस प्रताप हजौ तुम राई, काई पानी दीनौं जाइ।
अब आयौ मरवैकों ठाम, सोवज सिंधु जगायौ राम॥७०२॥
जो कोई दिन जीयौ चाह, राम सिया तुम देहु पठाई।
वेद शास्त्र में सुनैं भूपाल, लक्ष्मण हाथ तुमारो काल॥७०३॥
पश्चिम दिस रवि उदय कराय, झूठौ बोल न बोलौ राइ।
जाल जोग मेरु पत फिरै, जिनवर सुख झूठन निसरै॥७०४॥
हम जिनवर धर्म चितमैं धरै, अन्याईकौ सगुन करै।
तुम पर त्रियकी कीनौं आस, तातैं तज्यौ तुमारो पास॥७०५॥
मूरख पुत्र कुचारी नारी, पुत्र कुपुत्र सुराखे क्षार।
दुष्ट भूपकी सेवा करै, ताकौ वेग पुत्र परिहरै ॥७०६॥
तुम हौ तीन खंडके धनी, तेज अरु कीर्ति विस्तरी घनी।
सागर अंत लोग वस कियौ, चोरी करकै ल्यायो सिया॥७०७॥

माई पाप कुल को ऊपनौ, सील सुव्रत राखह आपनौं।
जाही प्रान होंह सरमंग, तौ वन करै और त्रिय संग॥७०८॥
परनारी जे संगत करै, अपजस होय नरक संचरै।
सीख हमारी करहु प्रमान, पठवहु सिया राम के थान॥७०९॥
और बात ईक सुनियौ देव, रामचंद सिव गामी एव।
संयम सील करै उपवास, हम क्यौं छांडे ताको पास॥७१०॥
सुन बोलो रावन धर मान, अरे अरे बंदर दुष्ट अज्ञान।
को लक्ष्मण को राघौ रंक, मुझको पत जाई क्षन अंक॥७११॥
वन फल भक्षे पाल में वास, दीनौं हंसरथ पिता निकास।
वनमैं सदा बधिकसौ फिरै, सो लंका कैसे संचरै॥७१२॥

श्लोक

अपवित्र न जानाति कर्तव्यं, बहु विस्तरं।
ते नरा स्वक्षयं पाति, नाल केरो बको यथा॥७१३॥
अपवित्रको चित्त न धरै, करै आडम्बर भूलौ फिरै।
जाई शरीर जेम डकुरावतर, मुडी ऊपर होय पांव॥
मुझ सम बली राव को नहीं, मुझ पौरुष तुम जानौं सही।
भाई कुम्भकर बड मल्ल, दुरजन दुष्ट तनैं सिर सल्ल॥७१४॥
इन्द्रजीत अरु मेघकुमार पौरुष तास न लभै पार।
भूचर खेचर सेवा करै, निस वासर ते ठाड़े रहै॥७१५॥
नव निधि रत्न मुझ भंडार, रथ हाथी कौं जानै सार।
पालक माईक संष्या नहीं, वर्ग संमान लंका गढ़ सही॥७१६॥
लंका कोट उतंग अवास, फिर समुद्र और चहुंपास।
गुरुजक मूरे अधिक उतंग, मेले गोला नार अभंग॥७१७॥

और बहुत को जानै बात, वस्तु पदारथ नाना भांत।
राज भोग गउ इन्द्र संमान, राक्षस वंस लकसै थांन॥७१८॥
सुनके बात कपि ध्वज भनौं, ज्यौं उपज्यौं सो विनसौ सुनौं।
भूपत यौं संसार असार, इन्द्र धनुस सम सब व्यौहार॥७१९॥
रथ हस्ती अथ वारी भटा, दिन सै जेम मेघकी घटा।
कर अंजुली जिम निकसै वीर, यौजै है सब आउ शरीर॥७२०॥
सगौ न कोई पुत्री मात्, पुत्र कलित्र मित्र नवि तात।
सगौ न कोई किस हुं कोई, स्वारथ आय करै सब लोई॥७२१॥
मये अनंत चक्री भूपाल, ते पुन भये वस्य सब काल।
भूप अनेक जु गए बजाई, और जु घनै बजाइसी आई॥७२२॥
जानौ भूपत अथिर स्वरूप, दीपक हाथ पर हुमत कूप।
सीख एक सुन लंकपत राई, सिया राम धरदे हुय ठाई॥७२३॥

अथ ध्रुवानुप्रेक्षा

आई गलौ जब गहतौं काल, जीवन सरन न कोई मूवाल।
इन्द्र नाग अत रक्षा करै, तौ पुन जन्म के मुख संचरै॥७२४॥
जेते कर्म उदय हो आई, तैसे तहां बांध ले जाई।
जीव बहुत जो लालच करै, बांधे कर्म सो लिए फिरै॥७२५॥
रावनसौं कह जत्रु न मंत्रु, जोतक वेद कठो कत तंतु।
कुलदेवता हस्तीकी वार, आवै जब जोराकी धार॥७२६॥
हिरन एक वनमाह बसै, भय विपत्त देखे दह दिसै।
आयौ सिन्धुदास गल गहौ, परौ कर्मवस छूट न लहौ॥७२७॥
भोगै जीउ जाइ आकाल, धरौ मोह वस अह निस वास।
उदम करै प्रेरु पुन चलै, तो पुन जिय जम परै॥७२८॥

है नहीं सरन कोई संसार, ब्रह्मा ईश्वर अय त्रपुरार।
ऐसो जान लंकपत राई, सिया राम धर देहु पठाई॥७२९॥

अथ अशरनानुप्रेक्षा

पंचभेद संसार उपाई, द्रव्य अरू क्षेत्र काल भव भाव।
सदा निरन्तर अन्तर तासु, तामैं जीव भ्रमें लै वासु॥७३०॥
दूह संसार जीव बहु फिरै, पहुंचे स्वर्ग नर्क संचरै।
क्षिन तिरजंच मानुष बहु वार, तौ पुन लहै संसारह पार॥७३१॥
माता मर घर अस्त्री होय, स्त्री मर पुन पुत्री होय।
पिता मरे सुत होय अनूप, यो जानहु संसार स्वरूप॥७३२॥
भ्रमौं जीव बहुवार निगोद, जात वनस्पति नाना भेद।
लयौ शरीर सूक्ष्म अरु कूल, फिर फिर अन्त आयौ मूल॥७३३॥
सात विसन सेये जिय हर्ष, फिरौ जीव चौरासी लक्ष।
भुगतै दुःख अनन्त संसार, मति राखहु सीत हि इह वार॥७३४॥

अथ संसारानुप्रेक्षा

उपजै नरक एकलौ हंस, एकत्र पंच मानुष कुल वंस।
सुर सुरपति नाग पुन एक, जानौं एक फिरै क्रम फन्द॥७३५॥
रोग कलेस आद बहु मर्म, नाना विधि भुंजै इक कर्म।
एकई जनमैं एकई मरै, एक ही जाय सिद्ध संचरै॥७३६॥
एक ही सुख देखें संसार, भुंजै इक ही दुःख अपार।
बन्धे कर्म एक बहु भेद, एकइ करै कर्मको छेद॥७३७॥
एक इही है वहु संसार, एकइ ज्ञान मान औतार।
बिच विचार लंकापति राई, जनक धिया तुम वेग पठाई॥७३८॥

अथ एकत्वानुप्रेक्षा

माता अन्य अन्य पिय पिता, बांधव अन्य पुत्र तिय सुता।
आत्मा भिन्न शरीर भी अन्य, जुही प्रक्रत मनुपत अन्य ॥७३९॥
पंचउ इन्द्री इक धर जोग, अन्य अन्य तसु भनौं न योग।
वस्तु पदारथ अन्य सुभाय, ऐसे जान सीता तज राउ ॥७४०॥

अथ अन्यत्वानुप्रेक्षा

सातउ धात वधि यौ शरीर, चर्म अस्थि जो रुधिर वसीर।
देखत रहै बिंबकी धार, ऐसी शरीर तनौ व्योहार॥७४१॥
बात पित्त विष्ठा कफ मूत्र, कनि कोटि कफ लेखा बहूत्र।
जैसो घरू चण्डार अधीर, जैसो देहास्थित व्यौहार॥७४२॥
अन्न पान रस पौखै देह, अनन्त जीवसो ठारै मेह।
मरन काल भैय सरै गात, पुन्य पाप उठ चालहि साथ॥७४३॥
चौवा चन्दन अगर जवादि, कस्तूरी फुलवाद।
पान सुपारी चूना काथ, रंग सगरसी जानव काय॥७४४॥
नवद्वारा हौ अनि ही श्रवै, जैसे फूरी गंगह चुबै।
देह नंत दुरगन्ध मुभाव, तजौ सिया तुम लंका राव॥७४५॥

अथ अशुचित्यानुप्रेक्षा

फूटी नवन भजसु सु भवै, तैसो जीव कर्म आचरै।
मनसा वाचा अय कर्मना, वधे जीव जे सुभ अति घना॥७४६॥
भुजैं दुःख सेवै मिथ्यात्व, उपजै नरक सहै बहु घात।
सत्तावन जे आश्रव खंधार, तासै कर्म करै संसार॥७४७॥
भयौ विकल व्रत सब परहरै, लाख चौरासी जोइन फिरै।
ऐसो जीव कर्मके भाव, तजौ सिया हो लंका राव॥७४८॥

अथ संवरानुप्रेक्षा

होय कर्म आश्रव निरोध, व्रत अरु सील गहै दिठ बोध।
सास्त्र देह गुरु निहचै धरै, वचन काय मनमें जो करै।।७४९।।
सहै परीस्या नाना भांत, श्री जिन धर्म जपै दिन रात।
मीन पतंग भोरा जिन हिरना, संवर विनु तिन पायौ मरना।।७५०।।
दंत बिना गज सोभ न होई, जन्म वृत्त विन अहलो लोई।
मन अब धार त्रकूटपति राई, उनका धिया दै वैगि पठाई।।७५१।।

अथ निर्जरानुप्रेक्षा

आपन वसै मीनु शरीर, तामैं भरियौ कर्म जु नीरु।
तप अंजलि भर नीरु, उसठि बूंद बूंद कर डारहु क्षिरु।।७५२।।
धरौ महावृत मन वचन काय, देहु जोग पर्वत सिल जाय।
वरसा काल रूखतर वास, मास पारवकौं धर संन्यास।।७५३।।
सीता काल तप सर वीर, देहु जोग मन राखहु धीर।
इहि विधि कर्म निपात हुब राव, राम त्रिया तुम वेग पठाव।।७५४।।

अथ लोकानुप्रेक्षा

नभ अनंत अनादि सरूप, ता मधि लोक अकास अनूप।
तलै भू महै सरवाकार, मध्य लोक झालर विस्तार।।७५५।।
ऊरध लोक मद्दल जिम जानि, तीनी लोक याही परवान।
ऊंची राजु चौदा विस्तार, तीनसै तेतालीस राजू घनाकार।।४५६।।
ऐसो लोक इतनी थिति होई, करहु न काहू करे न कोई।
उपजै विनसै वस्तु अनेक, थिर न रहै सो पुन छिन एक ।।७५७।।
जीव अजीव काल आकास, पुन्य पाप है ताके पास।
छैऊ दर्ब सो पूरन लोक, काल अनाद हर्ष अरु सोक ।।७५८।।
ऐसो जान लोक विवहार, जप तप संजम धरु आचार।
सुकृत संजम कीजे राई, राम धरनि वेगे देहु पठाई।।७५९।।

अथ दुर्लभानुप्रेक्षा

हे अनंत संसार असार, भूपति जीउ नहीं पायो पारु।
पंचउ इद्रिन के वस भयौ, खाद अखाद भेद नव लहौ॥७६०॥
रहौ निगोद अनंते काल, इक इंद्री वस भयौ विसाल।
दैखैं इन्द्री त्रक संख्या नहीं, चौइन्दी एक फिरतौ सहा॥७६१॥
पंच इन्द्रिय त्रस नाना भांति, कविजन कहै जानकै जाति।
काल अनंत उपजौ सोई, जीव जोग विश्राम न होई॥७६२॥
भुगतै विषय विकल मत भई, देव शास्त्र गुरु भावना गई।
जिनवर धर्म न पायो आदि, जैनधर्म विनु करनी वाद॥७६३॥
मोह मगन जिनपति सब करै, तातैं लाख चौरासी फिरै।
पावै नहीं सासुतो ठाव, चित विचार सिया तज राव॥७६४॥

अथ धर्मानुप्रेक्षा

दस विध धर्म कहौ निरग्रन्थ, जीव जोग तारन हि समर्थ।
पहलौ अग क्षमा जो धरै, सो संसार बहुरन हि परै॥७६५॥
जो कोमल राखै परनाम, उपजै जाई सास्वते ठाई।
आर्जव अंग तीसरों भजै, माया कुटलाई सच तजै॥७६६॥
झूठ न कहै होई जो घात, भाखै भुगतै साची बात।
धर्म तनो यों चौथी थान, जो पालै सोई निरवान॥७६७॥
सौच व्रत नर जोको धरै, लंपटताई लोभ परहरै।
जो नर व्रत संजम नर लीन, पांचउ इद्री दंडह दीन॥७६८॥
बारह व्रत तप भावै भाव, होई तासु सिधालहाल।
अंग आठमो है दया दान, जीउ सवै कोई असु समान॥७६९॥
आकिंचन अंग सु कहौ विसाल, जो नर धरै न व्यापे काल।
निहचल मनमैं राखै भाव, सोई होई सिवपुरको राव॥७७०॥

दस विध धर्म कहौ जिनदेव, जो पालै सिव पहुंचै एव।
इह विध धर्म जो पालै राई, राम त्रिया घर दे पहुंचाई॥७७१॥

वस्तुबंध

भन हि कपिध्वज सुन हो राव, विनास काल मजबुरई ठाव
सोचत सिंधु तुजू जगायौ, हरखानै रघुत्रिय लै आयौ॥७७२॥
रावन जपै कापिन सुन तेरौ दुष्ट स्वभाव।
आयौ मखौ तुमनौं करमौं कब न उपाय॥७७३॥
अनोप्रेक्षा द्वादस कही, दसमुख चित्त विचार।
प्रलय होयगौ नग्रकौ, मेल पराई नार॥७७४॥

चौपाई

सुनैं वचन रावन कपितनौ, भयौं कोपु बोलौ तक्षनौं।
दुष्ट चीकते देउ बुलाई, कपिध्वज वेग बिना सौ जाई॥७७५॥
गए चीक हनूकौ लेई, लागह धाउ न बहुतक देई।
बोल्यौ बंदर सुनहो नीच, ऐसो नाहीं हमरी मीच॥७७६॥
बुधी एक तुम आगै भनौं, जैसे मरन होय हम तनौं।
सुन बहु सूत तेल घृत रूई, बांधहु पूछ हमारी सही॥७७७॥
सुने वचन मन हरखत भयौ, बांध लागूठ दूर लै गयौ।
लैवै सांदुर दयौ लगाई, कपि उडके लंका पर जाई॥७७८॥
भयौ कोप केरौ लांगूठ, वरत अवास धुजां मठ टट।
सांलां गुरज कोट द्वाहरै, दाहै वृक्ष टर भौ परै॥७७९॥
ठांव ठांव अति होय पुकार, जारी लंका कीनी छार।
मंदर एक न ठाडौ रहौ, जानकी कुरसु खेत मैं दह्यौ॥७८०॥
राक्षस नगर विनास्यौ घनौं, कपि परहस सारौं आपनौं।
चर विमान चलियौ आकास, तक्षन भयौ रामके पास॥७८१॥

आवत देख्यौ अंजनी बाल, लक्ष्मन राम बहुत भूबाल।
बाजै सहित सामहै गयौ, कंठ लाग सब ही भेटियौ ॥७८२॥
हनू जोग दीनौं सनमानु वस्तु सिंघासन आधौ थांन।
भयौ सुचित्त रघु बूझै बात, कह कपि जानुकी कुसलात॥७८३॥
बोले कपिधुज जौरे हाथ, समाचार सुनहो रघुनाथ।
विदा तुमारी लै चालियौ, जैसी जुगति लंका में रायौ॥७८४॥
दधमुख बन वरतौ देखियौ, मुन मन माऊ ध्यांन दै रह्यौ।
नीर समुद्र जे आन्यौ जाई, जाति उसर्ग निवारौ आई॥७८५॥
आगै देखौ गठ असमांन, दीर्घ कोट राक्षसकौ थांन।
ताके सुता लंका सुन्दरी, मारौ राक्षस सोंमो वरी॥७८६॥
लायौ सागर बहुत विर क्षार, पहुंचौ लंका कोट मझार।
प्रथम बिभीषन घर में गयौ, बात विचार भेद सब दयौ॥७८७॥
चलौ जहांते धर अभिमांन, गयौ तहां सीता कौ थांन।
दई मूदरी मेरी मात, कही तुमारी सब कुसलात॥७८८॥
समाचार जो पाछै भए, ते सबइ व्यौरसो कहै।
तुमको उपज्यो चिंता सोग, सौ पुन भाष्यो सबै विजोग॥७८९॥
सीता ले बैठी संन्यास, राम मिलै मुख लेहौं ग्रास।
समाचार जो आनै कोई, तौ इह काया भोजन होई॥७९०॥
तुम कुसलात कही मैं देव, मांनहु वस्ते वरस्यौ मेह।
विनय बहुत सीता कियौ, दिवस ग्यारहैं भोजन दियौ॥७९१॥
मन्दोदरनी सीता पास, सो मैं बनते दई निकास।
बात जाइ रावनसौं कहीं, सीतापै कपि आयौ सही॥७९२॥
दसमुख किंकर पठये घनौं, ल्याबहु हनू बांध तक्षनैं।
आये किंकर बनह मझार, मारे सबै कियौ संधार॥७९३॥

इंद्रजीत अयौ तिह ठाई, हम जानी तबकै आयी।
आपुरा बन आगे ठाडौ भयौ, व्यासै बात सबै हम कहौ॥७८४॥
विकट वचन कहियौ समुझाय, मानौं नहीं लंकपत राई।
मेरे मनमैं उपजी भांख, लंका बार करी सब खाक॥७९५॥
चड विमान चलयो आकास, आये स्वामी तुमरे पास।
सीता सती सीलकी खान, कुसल क्षेम नन्दनवन जांन॥७९६॥
राघौ बात हनूकी सुनी, मनमें अति चिंता ऊपनी।
खेचद भूचर बोले राव, सिया छुडावन रचौ उपाय॥७९७॥
नल नील अंगद सुग्रीव, सेना ता सुन लखे भक्षेहुं।
चलौ सहित दलस्यौं संबूक, मानहु गगन ऊंगियौ सूक।
चले पवन पुत सुनि हनुवंत, ताकी सेना नाहीं अन्त॥७९८॥
और मिले बहुत तेरे राई, तिनकी गिनती कही नहीं जाई।
उठी गगन रज ऊपर गये, तब सामे लंकाकौं भए॥७९९॥
रथ हाथी पलानें जांन, रत्न निरचना चले विमान।
राघौ सेना सो भी आन, पंच वट्टन बदल घन मान॥८००॥
पहरे वखतर टोप संजोई, जैसे घटा मेघकी होई।
लक्ष्मण राम दोई वर वीर, दयौ मिलांन सरोवर तीर॥८०१॥
बैठे मतै पंचईक सूत, पठबहु वेग विचक्षन दूत।
जाय लंक रावन सो कही, लक्ष्मण राम आइयौ सही॥८०२॥
जो चाह जियौ दिन चारे, तौ वेग पडै जो रघुपत नारि।
आबहु राम चरनगह रहौ, जातैं राज लंकाकौं लहौ॥८०३॥
सीता तजै न सेवा करैं, ते निहचे लक्ष्मण कर मरै।
सुनकै वचन चालियौ दूत, पहुचौ रावन पास तुरन्त॥८०४॥

किनौ जुहारु भीतरो गयौ, लिखौ हाथ राघौकौं दियौ
जैसो वचन रघुपतिनें कहो, सो सवरी दसमुखसौं वीनहौ॥८०५॥
सुनौं वचन लंकापति राई, जानहु जेठमैं लागी लाय।
लीभ भई आए दोइ वीर, याल्यो बाध भराहों नीर॥८०६॥
रावन बोलो मारो दूत, काटौ नाक कांन संजूत।
मूंड़ मुड़ाय मुख कारौ करौ, सरवै ठार दिसा चहु फिरौ॥८०७॥
मंत्री बोलै सुनहो राव, ऐसो मन चिन्त बहु उपाय।
बीच वसीठ न मारै कोई, ताकौं क्षत्री धर्म न होई॥८०८॥
बालक त्रिया करेह न घात, पिता गुरुकौं करह नि पात।
बोर नग्न वसीठ जोहनैं, एते पांय बराबर गनैं॥८०९॥
सुनैं वचन बोल्यो दुसास, जाहु दूत तुम रामहु पास।
कहौ संदेसौ जाई, रहौं कहां वनमें तुम झाइ॥८१०॥
जैसे पक्षी कैमोडी जात, करै सिचान न सेती खांति।
काहू समैं पूछ नहि पांख, तैसे हमसौं करते भाख ॥८११॥
सुनैं वचन फिर चलियो दूत, गयौ जहां दसरथके पूत।
जैसो उत्तर दसमुख दियौ, तैसो रघुपतसौं वीनयौ॥८१२॥
सुनियौ बात विभीषन राय, सेना सहित गयो रघुराय।
कियौ जुहारु भेट ले धरी, भनै राम आवहु लंके सुरी॥८१३॥
बैठे मते सबै मिल राव, लंका भंजन रचे उपाव।
जुरे विवान जु आरंपार, चलियौ सेना सुभट जुहार॥८१४॥
पायौ भेद लंकापत राई, कुम्भकरन भाई लयौ बुलाई।
वेगे जाहु चढ़ि हो असवार, मारौ राम लक्ष्मणा कुमार॥८१५॥

कुम्भकरन सुन कियौ जुहारु, चलियौ सुभट बहु साथ जु मार।
दुहू पंथके सावथ भिरै, होय जुद्ध कछु समझ न परै॥८१६॥
कुम्भकरन वल जाही न गएयौ, बहुत कंद दल राघौकौ हनौं।
देखे विमुख राम त्रपुरार, तक्षिन उठे हनू किलकार॥८१७॥
कुम्भकरन दूजे हनुवंत, भिरे महांते ज्यौमे मंत।
घनैं काल वीत्यौ संग्राम, कपिधुज कुम्भ हनौं तिह ठाम॥८१८॥
घायल एक लंका मैं गयौ, घनैं काल वीत्यौ खसौं कयो।
सुनी बात ऊपनौ कोप, आप न चड़ौ अधिक आरोप॥८१९॥
रावन राम होई दल जुटा, उठियौ मानौं मेघकी घटा।
उठी रेनु आकासे गई, सूर किरन नव दीसै क्षई॥८२०॥
वीत्यौ घनौं जहां गीध मसान, सुर गुरु नवि सुर करै वखान।
चलियौ नदी रुधिर की धार, मरै सुभट नहीं गनती पार॥८२१॥
डारौ चक्र लंकापत नाथ, तब राघौ लक्ष्मण के हाथ।
ठाडौ हतौ लंककौ धनी, फिर लक्ष्मण घाल्यौ तिह भनी॥८२२॥
रावन सिर टूट्यौ भुव पर्‌यौ, मानहु चक्र उतारै धरौ।
लूटी लंका सीध्यो काज, बोल विभीषन दौनौं राज॥८२३॥
सीता लई राम लक्ष्मणा, गये आपने थान तक्षणा।
दीनी विदा हते जे राई, ते सब गये आपने ठाई॥८२४॥
साहन सेवक द्रव्य भंडार, सज्जन लोग बहुत परवार।
इन्द्र जेम अत सोभा धरै, हनूराज कुण्डलपुर करै॥८२५॥
एक दिवस सुभ रचौ विमान, गयौ मेरू जहां जिनवर थान।
जिनवर चरन पूजै अत भाऊ, जिन गुन पठत है अत उछाह॥८२६॥

रहे रात जिनवर के थान, धर्म कथा कौ करै वखान।
देखौ एक विमान अकास, बहुत संपदा अधिक विकास॥८२७॥
विनस गयौ देख्यौ चौपाइ, भयौ निपात नाहीं तिह ठांह।
मन वैराग ऊपनौं घनौं, ईम शरीर बिनसै हम तनौ॥८२८॥
वस्तु पदारथ दीसै लोई, काल जोग पुन ते भी क्षै होई।
त्रिया कुटुंब संपदा रास, ते सब मोह कंठकी फांस॥८२९॥
पद निरग्रंथ बड़ौ संसार, औम दिन दिन क्षीजत है आव।
काज जीवकौ एक न सरै, बहुर लक्ष चौरासी फिरै॥८३०॥
परौ मोहवस बांधै कर्म, सहै अधिक दुख नाना कर्म।
कर अंजुल ज्यौं पानी जाई, तिर न सकै जीवकौ तारी॥८३१॥
मन वैराग भूप जब भयौ, त्रिया कुटुंब पुत्र तज दयौ।
आए जहां राव हनिवतं, बैठे सभा सहित गुनवंत॥८३२॥
मंत्री कहै सुनो हो देव, कर हौं किहि विधि संजम एव।
सकल संपदा तुमरे सार, कह अब स्वर्ग कहा है क्षार॥८३३॥
स्वर्ग अपछरा जेवस रूप, तातैं तुम धर त्रिया अनूप।
बस्त पदारथ रत्न भंडार, ते सब हैं तुम घर विवहार॥८३४॥
स्वामी जीवदया व्रत धरौ, घर छोडत कुटंम सब मरौं।
चित्त विचार कहौ हो राव, जीव दया विनु कौं न उपाय॥८३५॥
रह रह मंत्री बात विचार, अथिर संपदा इस संसार।
आन काल जब गहतौ हक्ष, हमकौं राखैं को सम रक्ष॥८३६॥
सेवक साहू नू हस्ती साज, पुत्र बुलाई दियौ सबु राज।
टोरौ सबै मोहकी पास, आपुन गये मनीस्वर के पास॥८३७॥

राजा साटै सातसै संग, हनू साथ तपु लियौ अभंग।
धरियौ वृत डिगंमर भेष, काया मन वच हनू नरेस॥८३८॥
अंतेवर जे रानी भई, करकैं मतौ अंजिका ढिग गई।
दक्ष्या रही अंजका तनी, तजौ कुटंम संपदा घनी॥८३९॥
ग्यारह अंग अरु चउदह पूर्व, हनू मुनीस्वर भासे पर्व।
द्वादस भेद करै तपु मुनी, सही परीस्या जाई न गनी॥८४०॥
अधिक बातकौं कहै बखान, उपजौ मनुकौं केवलज्ञान।
यती अघातिया कर्म हि छेद, पहुंचे मुक्त सुख बहु भेद॥८४१॥
मुजै सुख अनंत तिहि थान, कही नहीं सुरगुरु वखान।
मीचुन जुरा न उपजै वाल, अक्षै तहां स्वासतौ काल॥८४२॥
ईहि विधि जो कोई तप करै, ऐसौ पदवी ताकौं फुरै।
जो यह कथा सुनै दै कान, काल बलविधि पावै निरवान॥८४३॥
गाउ गाउ जो हनून होई, तेल सिंदूर सू पूजै जोई।
पवन पूत बैकुंठह गयौं, सिध सुध पदवी पाइयौ ॥८४४॥
खेटे धर पूजै हनवंत, तासु पासु वर्त निहि अंत।
जीव जंतु तसु आगै मरै, पूज कुदेव नरक संचरै॥८४५॥
जानहु भव्य एहु आचार, मिथ्या देव तजौ विवहार।
दुष्ट देवकी संक न करौ, ताथै असुभ टोर निस्तरौ॥८४६॥
मूल संघ भव तारनहार, सारद गक्ष गख्वे आचार।
रत्नकीर्ति मुनि अधिक सुजान, तास पद मुनि गुनह निधान॥८४७॥
अनंतकीर्ति मुन प्रगटौ नाम, कीरत अनंत विस्तरी जाम।
मेघू वूंद पुन जाइ न गनी, तासु मुनी गुन जाइ न भनी॥८४८॥

तासु सिस्य जिनवरन निलीन, ब्रह्मराय मनमति कर हीन।
हनू कथाकौ कियौ परगास, क्रिगावंत मुनकौ है दास॥८४९॥
भनी कथा मनमैं धर हर्ष, सोलहसै सोला सुभ वर्ष।
ग्रीषम रित है मास वैसाख, नौमी सन अंधेरो पाख॥८५०॥
हसौ कोई जनि पंडित लोई, विनती करौ दोई कर जोई।
अक्षिर मात जो भूलौ होई, तासु दोस मत दीजौ कोई॥८५१॥
वारवार विभनौ पसारी, जगमैं जीवदया वृत सार।
जो नर जीवदया प्रतिपाल, रोग सोगु नवि व्यापति काल॥८५२॥
जिनवर एक बात मो देव, कुगुरु कुशास्त्र निवारौ देव।
होहु सदा सन्यास हि मर्न, भव भव धर्म जिनेश्वर सर्न॥८५३॥
स्वामी सोवृतनाथ जिनेन्द्र, सुमरन होई सिधि आनंद।
नासै पाप भली मति होई, नमौं सीस जोरे कर दोई॥८५४॥

॥ इतिश्री हनुमान चरित्र कथा संपूर्णम् ॥

दोहा

जैसी प्रत पाई हती, तैसी लई उतार।
भूलचूक जो होय सो, बुधिजन लियौ सुधार॥

श्रीहनुमंताष्टकं

(१)

सं सं सं सिद्धनाथं, प्रणमति चरणं, वायु-पुत्रं च रुद्रं।
तं तं तं दिव्यरूपं, महमह हसितं, गर्जितं, मेघनादं॥
तं तं तं त्रिलोकनाथं, तपति दिनकरं, तं त्रिनेत्र स्वरूपं।
रं रं रं रामदूतं, रणरंग रमितं, रावणं छंदनाथं॥

(२)

वं वं वं बालरूपं, उतिम गिरवरं, झापितं सूर्य-बिंबं।
मं मं मं मंत्रसिद्धं, करकुल तिलकं, मर्द्दनं शाकिनिनां॥
लूँ लूँ लूँ लूँकार बीजं, हनति हनुमतिं, हन्यतं शत्रु-सैन्यं।
दं दं दं दीर्घरूपं, धर धर शिखरं, घातितं मेघनादं॥

(३)

ॐ ॐ ॐ उच्चाटितं तं, सकल भुवतंल, योगिनी वृन्दरूपं।
क्षं क्षं क्षं क्षिप्रवेगं, क्रमत्युदधिपरं, ज्वालितं लंक-कोटं॥
छं छं छं छिंदितत्वं, दनरूह कुलकं, मुंचितं बुंबकारं।
किं किं किं कालदृष्टं, जलनिधि तरणं, राक्षसं देवदैत्यं॥

(४)

वृं वृं वृं वृद्धि सृष्टं, त्रिभुवन रचितं, दैत्यं तं सर्वभूतं।
देवानां क्षत्रि मूर्तिं, त्रिपणि भुवधरो, पावकं वायुरूपं॥
त्वं त्वं त्वं वेद तत्वं, तुहि तुहि रटितं, सार्थबाणं स्वरूपं॥

(५)

क्रं क्रं क्रं क्रंद नत्वं, ननु कमलतले, राक्षसं रौद्रख्प।
ह्रौं ह्रौं ह्रौं त्राटि तत्वं, गहगुण सहितं, भैरवो यक्षभूतं॥
श्रीं श्रीं श्रीं साधुख्पं, तटकलं, तंत्रिख्पं स्वख्पं।
क्लीं क्लीं क्लीं कारख्पं न भवति दरिद्रं, व्याधि संतापशोकं॥

(६)

वं वं वं वानरत्वं, वनगिर सहितं, वास तंत्रीसलोकं।
अं अं अं साक्षनंतं, गुणगण गणितं, नास्ति रूपं स्वख्पं॥
उत्पाटं मेरु श्रृंगं यमदिसि गमितं, ऊर्वसि लक्ष्मणत्वं।
वं वं वं खड्गहस्तं. तपत भुवतलं, त्रोटितं नागपासं॥

(७)

एँ एँ एँ कारख्पं, त्रिभुवन पठितं, बोधि मंत्राधि मंत्रं।
तं तं तं कोपितं च, दिपति दिनकरं, पर्वतं वज्रहस्तं॥
दं दं दं देश दलनं, करनष विदरं रौद्ररूपं करालं॥

(८)

संग्रामें शत्रुमध्ये, जलनिधि तरणे, व्याघ्र सिंहे च सर्पे।
राजद्वारे च मार्गे, गिरिगुह बिवरे, निझरि कंदरे वा॥
भूते प्रेतेषु सर्व्व, ग्रहगुण विषमें, शाकिनि योगिनिनां।
विस्फोटं च ज्वराणां, हनति हनुमतं, मोहरुद्रं नितांतं॥

x x x

पठनाच्छ्रवणात् जाप्यात्सिद्धिर्भवति वांछिताः।
निष्कामना भवंत्येवं दुर्लभं परमं पदं॥९॥

॥ इतिश्री हनुमंताष्टकं सम्पूर्णम्॥

माँ जिनवाणी स्तुति

माँ जिनवाणी ममता न्यारी, प्यारी प्यारी गोद है थारी।
आँचल में मुझको तू रख ले, तू तीर्थंकर राजदुलारी ॥टेक॥
वीर प्रभो पर्वत निर्झरणी, गौतम के सुख कंठ झरी हो।
अनेकान्त और स्याद्वाद की, अमृतमय माता तुम ही हो।
भव्यजनों की कर्णपिपासा, तुझसे शमन हुई जिनवाणी॥१॥
माँ जिनवाणी.....
सप्तभंग मय लहरों से माँ, तू ही सप्त तत्व प्रकटाये।
द्रव्य गुणों अरू पर्यायों का, ज्ञान आतमा में करवाये।
हेय ज्ञेय अरू उपादेय का, भान हुआ तुमसे जिनवाणी॥२॥
माँ जिनवाणी.....
तुझको जानूँ तुझको समझूँ, तुझसे आत्म बोध को पाऊँ।
तेरे आँचल में छिप-छिपकर दुग्धपान अनुयोग को पाऊँ।
माँ बालक की रक्षा करना, मिथ्यातम को हर जिनवाणी॥३॥
माँ जिनवाणी.....
धीर बनूँ मैं वीर बनूँ माँ, कर्मबली को दल-दल जाऊँ।
ध्यान करूँ स्वाध्याय करूँ बस, तेरे गुण को निशदिन गाऊँ।
अष्ट करम की हान करे यह, अष्टम क्षिति को दे जिनवाणी॥४॥
माँ जिनवाणी.....
ऋषि मुनि यति सब ध्यान धरे माँ, शरण प्राप्त कर कर्म हरें।
सदा मात की गोद रहूँ मैं, ऐसा शिर आशीष फले।
नमन करें "स्याद्वादमती" नित, सुधारस दे जिनवाणी ॥५॥
माँ जिनवाणी.....

गणिनी आर्यिका स्याद्वादमती माताजी